आदर्शोन्मुखी यथार्थ

चरणसिंह जी के राजनीतिक चिन्तन में यथार्थ आदर्शोन्मुखी है। बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध के दूसरे दशक में नागपुर के काँग्रेस महा अधिवेशन में पंडित नेहरू द्वारा समर्थित सहकारी कृषि का चरणसिंह जी ने विरोध किया था। उसका अभिप्राय सहकार का विरोध कभी नहीं था। सहकारिता के उस प्रतिमान का विरोध था, जो संस्थाओं को प्रमुखता देकर व्यक्ति के अभिक्रम को और स्वातन्त्र्य को क्षीण कर देता है। यथार्थ यह है कि आज ग्रामीण समाज में सहकार की महती आवश्यकता है। सहकारिता व्यक्ति के कौशल और उत्पादन के परिमाण को बढ़ा सकती है, तो वह स्वागत योग्य है। सन् १९७७ की जनता पार्टी की आर्थिक नीतियों की प्रस्तावना में चरणसिंह जी ने सेवा-सहकारिता या साधन उपलब्ध कराने के सहकार को स्वीकार किया है। आज के राजनीतिक चिन्तन का मुख्य प्रश्न है कि राज्य व्यवस्था व्यक्ति के स्वातन्त्र्य को किस सीमा तक सुरक्षित रख सकेगी और राज्य के हस्तक्षेप की क्या मर्यादा हो ? चरणसिंह जी ने इस क्षेत्र में यथार्थ और आदर्श का सामञ्जस्य किया है। किसान को साधनों का भीषण अभाव है। ये सहकार के द्वारा अपनी सामर्थ्य अवश्य ही बढ़ा सकते हैं। इसी प्रकार अपना स्वातन्त्र्य अक्षुण्ण रखकर सहकार के समर्थ स्वरूप की अनुभूति कर सकते हैं।

नैतिक राजनीति

चरणसिंह जी ने अपने चिन्तन और चारित्र्य की प्रामाणिकता द्वारा एक परिपक्व राजनीति का दर्शन कराया है। सन् १९७७ की काँग्रेस की ऐतिहासिक पराजय के बाद यह अन्याय के प्रतिकार की भावना सहज थी कि आपात्-कालीन अनाचारों का नेतृत्व करने वालों को तत्काल दण्डित किया जाये। किन्तु जिस राजनीतिक सब्र और संयम का उदाहरण प्रस्तुत किया गया, वह राजनीति की प्रामाणिकता और परिपक्वता का लक्षण है। विभिन्न आयोगों की रचना का वस्तु-स्थिति की जांच कराने को किन्हीं क्षेत्रों में सही नहीं माना गया। आयोगों को अनावश्यक भी समझा गया ; क्योंकि आलोचना करने वाले यह विस्मृत कर देते हैं कि जांच के बिना आज के सत्ताधारी भी निरंकुश और नियन्त्रणहीन हो सकते हैं। जांच आयोगों द्वारा एक ओर तो लोकतान्त्रिक सन्दर्भ में सत्ता के दुरुपयोग न होने की आकांक्षा बलवती होगी, और दूसरे सत्ता द्वारा सम्पत्ति के अवैध संचय पर लोभ की दृष्टि समाप्त होगी। यह नैतिक राजनीति की नीतिमत्ता है कि वस्तु स्थिति की जांच के लिए आयोंगों की रचना की गई। इससे स्वस्थ राजनीति के शुभारम्भ होने की कल्पना और कामना करनी चाहिए।

अनुशासनवादी चिन्तन

लोकतांत्रिक राजनीति में एक जो अनुशासन का अभाव होकर भीड़तन्त्र का प्रभाव स्थापित होता है, उसका विरोध चरणसिंह जी के राजनीतिक चिन्तन और चरित्र में सर्वत्र परिलक्षित है। अनुशासन के पक्षधर के रूप में उनकी छवि उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्रित्व काल में रही है। अनुशासित व्यक्ति और समाज ही लोकतन्त्र को सही दिशा और दायित्व देने में समर्थ हैं। लोकप्रियतावाद कभी-कभी अनुशासन के विरोध में प्रतीत होता है ; किन्तु चरणसिंह जी ने लोकप्रियतावाद का समर्थन न कर अनुशासन का पक्ष लिया है। फिर भी सन् १९७७ मार्च के महानिर्वाचन ने यह स्पष्ट किया है कि वे अपने चिन्तन और चरित्र में लोकप्रियतावाद और अनुशासनवाद दोनों का संतुलन, सामञ्जस्य और समन्वय करने में समर्थ हैं। भारतीय राजनीति में एक अनुशासन की आवश्यकता है, जो स्वेच्छया व्यक्ति के मन में जाग्रत हो तथा समाज संकल्पित और व्यवस्थित होकर प्रगति के मार्ग पर अग्रसरित हो सके।

चरणसिंह जी के अनुशासनवाद को दृष्टिगत रख कर स्वच्छ प्रशासन के लिए अपने कार्यकाल में सर्वत्र और सदैव प्रयत्न किया और कर रहे हैं। राज्यकर्त्ता अपने कर्त्तव्यबोध से यदि सामान्य नागरिक के अधिकारों का रक्षण नहीं करता, तो यह समाज के लिए दुर्भाग्यपूर्ण होता है। राज्यकर्त्ता का कर्त्तव्यबोध उसके लिए अनिवार्य है ही, समाज के लिए भी अत्यन्त आवश्यक है। स्वच्छ प्रशासन में उनसे किसी रुचि वैचित्र्य का आरोप न कर, सहज रूप से यह देखना कि लोकतांत्रिक सन्दर्भ में समाज में विभिन्न

वर्गों का दायित्व क्या है ? प्रशासन में संलग्न व्यक्ति देश में अधिक शिक्षा और सुविधा सम्पन्न, सामान्य नागरिक की तुलना में हैं। अतः स्वच्छ प्रशासन की आकांक्षा सहज और स्वाभाविक है।

जनवादी चिन्तन

चरणसिंह जी एक ऐसे अनुशासनवाद के पक्षधर प्रतीत होते हैं, जो राज्यशक्ति को अधिक विस्तार या उसकी हस्तक्षेपनीयता में अधिक बढ़ोत्तरी पर विश्वास नहीं करता। जनवादी शक्तियों को बढ़ाने पर उनका अधिक बिश्वास है। जनवादी शक्तियाँ ही परिवर्तन का समर्थन करती हैं। बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध के दूसरे दशक में, जब चरणसिंह जी के अभिक्रम से भारतीय क्रांतिदल की स्थापना हुई थी, तब यह स्पष्ट हो गया था कि क्रांतिवादी शक्तियाँ यथा-स्थितिवाद को तोड़ने का संकल्प ले रही हैं। भारतीय क्रांति-दल में पिछड़ी जातियों के रूप में मेहनतकश और कृषि-मजदूरों ने अपनी भागीदारी और समर्थन से यह सिद्ध किया कि चरणसिंह जी एकऐसे जनवाद के समर्थक हैं, जो समाज की नींव में विशाल जनसमुदाय को, समर्थ और सम्पन्न रूप में चाहता है। भारतीय समाज में यह स्थिति स्पष्ट रही है कि उत्पादन में लगा हुआ विशाल जनसमुदाय उपेक्षित रहा है। शेष समाज की सभ्यता में उसे दाखिल नहीं किया गया था। चौधरी चरणसिंह जी का राजनीतिक चिन्तन कोटि-कोटि उपेक्षित जनों के प्रति समर्पित है।

●

अपने सुखों की, आनन्दों की, अपने यश की, प्रतिष्ठा की, यहाँ तक कि अपने प्राणों की भी आहुति चढ़ा दो और मानव-आत्माओं का ऐसा सेतु बाँध दो, जिस पर होकर ये करोड़ों नर-नारी भवसागर को पार कर जायं। 'सत्य' की समस्त कठिनाइयों को एकत्र करो। यह चिन्ता मत करो कि तुम किस पताका के नीचे चल रहे हो। यह भी चिन्ता मत करो कि तुम्हारा वर्ण क्या है—लाल, हरा या नीला ! बल्कि सब वर्णों को मिला दो और स्नेह के प्रतीक श्वेत रंग का प्रखर तेज उत्पन्न करो। हम केवल कर्म करें; परिणाम अपनी चिन्ता स्वयं करेंगे।

—स्वामी विवेकानन्द

●

नेहरू बनाम चरण सिंह

□ सत्यपाल मलिक

केन्द्रीय गृहमन्त्री चौधरी चरणसिंह ने एक बुनियादी बात नियोजन और देश निर्माण के संदर्भ में उठाई है। उन्होंने श्री नेहरू को अपना नेता और नेकनीयत मानते हुए भी नेहरू जी की आर्थिक नीतियों को देश की दुर्दशा के लिए जिम्मेदार ठहराया है तथा नियोजन में प्राथमिकताओं को पूरी तरह बदल देने की बात बहुत जोरदार ढंग से कही है। चरणसिंह जी ने श्री नेहरू का अंधविरोध नहीं किया है, बल्कि तथ्यों के आधार पर नेहरू जी के आर्थिक विचारों की निरर्थकता साबित करते हुए एक ठोस और आर्थिक वैकल्पिक कार्यक्रम देश के समक्ष रखा है।

जरूरी हो गया है कि दोनों विचारों का अन्तर लोगों के सामने आये और देश की आर्थिक बीमारियों के कारण व इलाज पर एक स्वस्थ बहस चले।

चौधरी चरणसिंह जो अपने विचारों को मूलतः गाँधीवादी मानते हैं, उन्होंने इस बात को उत्साहवर्द्धक बताया है कि देश के विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले लोग अब गाँधीवाद को विभिन्न समस्याओं का समाधान मानने लगे हैं। अभी हाल में प्रकाशित पुस्तक 'गाँधियन ब्लूप्रिन्ट' में चरणसिंह ने लिखा है कि वर्तमान स्थिति आजादी के फौरन बाद की गई इस गलती के कारण पैदा हुई कि हम तत्काल औद्योगीकरण की तरफ चल दिये। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने सदैव कृषि को पहला दर्जा देने की बात कही थी। उसके बाद हस्तकला और कुटीर उद्योगों, फिर छोटे और हल्के उद्योगों तथा सबके बाद भारी उद्योगों के विकास की बात कही थी। मगर गाँधी जी के राजनीतिक उत्तराधिकारी श्री जवाहरलाल नेहरू ने उनके विचारों को तिलाञ्जलि दे दी और ऐसी हवाई नीतियाँ अपनाईं, जो देश की वास्तविकता और आंतरिक स्थितियों से कतई मेल नहीं खाती थीं।

श्री नेहरू से चरणसिंह जी का विचार-वैभिन्न्य कोई एकदम ताजा घटना नहीं है, बल्कि यह सन् १९५९ में काँग्रेस के नागपुर अधिवेशन से ही शुरू हो गया था। नागपुर में कांग्रेस के अधिवेशन में नेहरू जी ने सहकारी खेती सम्बन्धी प्रस्ताव का समर्थन किया था। उस समय चरणसिंह जी ने राष्ट्र नेता जवाहरलाल नेहरू का अधिवेशन में जमकर विरोध किया था। नेहरू जी इसे भूले नहीं। इसके बाद चौधरी साहब के साथ श्री नेहरू, श्री ढेबर और श्री सम्पूर्णानन्द जी ने क्या व्यवहार किया वह एक लम्बी और अलग कहानी है। अपने राजनीतिक जीवन में चौधरी साहब को इस साहसिक काम की भारी कीमत अदा करनी पड़ी।

पहली पंचवर्षीय योजना में कृषि के लिए ३६ प्रतिशत राशि और उद्योगों के लिए पाँच प्रतिशत की व्यवस्था की गई थी। चरणसिंह का कहना है कि उस समय सरदार पटेल के विचारों का प्रभाव इस योजना पर पड़ा था। मगर सन् १९५६ में यानी दूसरी पंचवर्षीय योजना में कृषि के लिए घटाकर कुल २१ प्रतिशत राशि रखी गई। दूसरी तरफ उद्योग के लिए पहले पांच से बढ़ाकर २३ प्रतिशत राशि की अपेक्षा पाँच गुना से अधिक बिजली (और सस्ते

दामों पर) बड़े उद्योगों को दी जाती रही। इस प्रकार उद्योगों में खरचा होने वाली राशि का अनुपात कृषि के मुकाबले में और भी बढ़ गया।

१९ जनवरी सन् १९५६ को नेहरू जी ने राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक में बोलते हुए कहा कि देश की उन्नति के मूल बड़े कारखाने हैं, दूसरी चीजों का उतना महत्व नहीं है। इसलिए उन्होंने इसी वर्ष, बजाय अपने देश में कृषि की उन्नति पर बल देने और उस पर अधिक व्यय करने के २९ अगस्त को अमेरिका से रियायती दरों पर पी० एल० ४८० के अधीन अन्न मांगने (और अधिक से अधिक रुपया उद्योगों पर खर्च करने) का फैसला किया।

पंडित नेहरू ने सन् १९५४ तक समाजवाद का नाम नहीं लिया था। सन् १९५४ के नवम्बर में वह चीन गये और वहाँ से वापस आते ही बिना मंत्रिपरिषद या काँग्रेस वर्किंग कमेटी से परामर्श किए उन्होंने समाजवाद को अपने देश का लक्ष्य घोषित कर दिया तथा दो महीने बाद जनवरी सन् १९५५ में २४ घंटे के अन्दर काँग्रेस आवड़ी के अधिवेशन में गाँधीवाद को छोड़कर सर्वसम्मति से समाजवाद की हिमायती बन गई। समाजवाद का अर्थ हुआ बड़े-बड़े कारखाने या बड़े-बड़े फार्म, सरकारी मिल्कियत के नियंत्रण में स्थापित करना और कृषि की अपेक्षा बड़े उद्योगों को प्रोत्साहन देना। चौधरी साहब का कहना है कि इस विषय में एक दिलचस्प बात यह है कि जहाँ नेहरू जी ने चीन की नकल करके समाजवाद अपनाया और कृषि की बजाय बड़े उद्योगों को पहला स्थान दिया वहाँ उसी देश अर्थात् चीन ने जब (अप्रैल सन् १९६२ में) अपने यहाँ प्राथमिकताओं का क्रम बदल दिया, तो नेहरू जी ने उसी की नकल में (नवम्बर सन् १९६३) को अपनी नीति बदलने अर्थात् कृषि को पहला स्थान देने की बात कही।

चौधरी साहब मानते हैं कि सरदार पटेल की मृत्यु के बाद नेहरू जी काँग्रेस पर पूरी तरह हावी हो गये थे और राष्ट्रपिता की सलाह के ठीक विपरीत दिशा में चल दिए थे।

श्री नेहरू जी की जीवनी लिखने वाले प्रसिद्ध लेखक श्री माइकेल ब्रेखर से बात करते हुए नेहरू जी ने इस बात का खंडन किया कि चीन-यात्रा और समाजवाद की मेरी बातों में कोई रिश्ता है। मगर श्री ब्रेखर की राय है कि नेहरू जी पर चीन-यात्रा के दौरान वहाँ की प्रगति और अनुशासन का भारी असर पड़ा और अंतःकरण में श्री नेहरू जी ने महसूस किया कि एशिया में सैद्धान्तिक लड़ाई में चीन बाजी मार रहा है। इस यात्रा के बाद के नेहरू जी के बयानों और अमल से भी यह साबित हो जाता है कि आवड़ी का समाजवाद चीन से आया।

इस दौरान श्री नेहरू ने भारी उद्योगों के प्रति बेहद आसक्ति दिखाई। खेती और रोजगार पैदा करने वाले छोटे उद्योगों की अपेक्षा का यह दौर था। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डा० ई० एफ० शमाखर के अनुसार नेहरू अपने इस्पात कारखानों पर बहुत गौरवान्वित थे– कहते थे कि इनमें हम देश की शक्ल बदल देंगे। वह राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं पर भी बहुत गर्व का अनुभव करते थे कि भविष्य का नेतृत्व यहीं से आयेगा। मगर मेरी राय में वे एक भयभीत व्यक्ति की तरह अँधेरे में सीटी बजा रहे थे। एक बार जब मैं बम्बई में शानदार अणुशक्ति केन्द्र का नेहरू जी के साथ चक्कर लगाकर लौट रहा था तो केन्द्र के दरवाजे पर हमारी कार एक भिखारी की बैसाखी पर लगभग चढ़ गई होती। उस समय मैंने नेहरू जी से पूछा कि अणुशक्ति केन्द्र और भिखारी क्या साथ-साथ जँचते हैं? इस पर नेहरू जी चुप हो गये।

यह घटना नेहरू जी की भारी उद्योगों पर ज्यादा जोर देने और दिखावे के अर्थशास्त्र की नीति की असफलता को उजागर कर देती है।

मगर दूसरी योजना के बाद जो-जो नतीजे निकले, जो-जो आर्थिक कठिनाइयाँ पैदा हुईं, उनसे नेहरू जी इस नतीजे पर पहुँचे थे कि प्राथमिकताओं के मामले में उन्होंने और योजना आयोग ने गलती की थी। ९ नवम्बर सन् १९६३ को राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक में उन्होंने एक तरह से कबूल भी किया, जब उन्होंने कहा कि कृषि–उद्योगों से भी ऊँचा स्थान रखती है तथा कृषि आर्थिक विकास का मूल है।

फिर ११ दिसम्बर सन् १९६३ को लोकसभा में बोलते हुए पंडित जी ने कहा कि 'मैं बड़े-बड़े कारखानों और अर्वाचीन तकनीकी ज्ञान का बड़ा प्रशंसक रहा हूँ, परन्तु देश की बेरोजगारी की समस्या उससे हल नहीं हुई तथा यह भी कि आज मुझे रह-रह कर महात्मा जी की याद आती है।' साथ ही यह भी कहा कि 'मेरी और योजना कमीशन की गलती के कारण देश की आर्थिक सम्पत्ति का बहुत बड़ा भाग चन्द आदमियों के हाथों से इकट्ठा हो गया है, मैं लोकसभा को वचन देता हूँ कि भविष्य में यह गलती नहीं होगी।'

उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री बहुगुणा को ७ जनवरी सन् १९७५ को लिखे एक पत्र में चौधरी साहब ने लिखा कि महात्मा जी कृषि को पहला स्थान देना चाहते थे। नेहरू जी ने ठीक इसके उल्टा किया और जब देश बर्बाद हो गया, तो उनको यह महसूस हुआ कि उनसे गलती हो गई है और महात्मा जी की याद की। हो सकता है कि परमात्मा उनको और लम्बा जीवन देता तो वे अपनी सारी नीतियाँ बदल देते, परन्तु देश का दुर्भाग्य कि उनकी मृत्यु हो गई और डेढ़ वर्ष बाद उनकी बेटी के हाथ में शासन की बागडोर आ गई, जिनको नीतियों के गुण व दोष से कोई मतलब नहीं था। वह कहती थीं कि वह अपने पिता की नीतियों पर ही चल रही हैं, परन्तु उनको इतनी मोटी-सी बात भी नहीं मालूम थी कि उनके पिता जी ने, जिनके पास वह रहती थीं, अपनी नीतियों की गलती को खुलकर स्वीकार कर लिया था।

दिलचस्प बात यह है कि जनता पार्टी के भी कई शीर्षस्थ नेता अभी नेहरूजी की ही आर्थिक नीतियों को सही मान रहे हैं।

नेहरू जी के आर्थिक रुझानों की व्यर्थता बताने का काम नकारात्मक होता यदि चरणसिंह जी ने इसके विकल्प में ठोस आर्थिक-कार्यक्रम न रखा होता। इसी से आज वे जनतापार्टी के आर्थिक प्रवक्ता बन गये हैं।

चरणसिंह जी का कहना है कि गाँधी जी की वास्तविक प्रतिभा थी; 'उनका एकदम निचले स्तर से नियोजन का विचार।' भारत की बेहतर सेवा खेती से; जिससे खाना और कपड़ा पैदा होता है, कुटीर उद्योग जिससे मानव श्रमशक्ति की जरूरत बढ़ती है, घटती नहीं और जो बिल्कुल साधारण तकनीक के प्रयोग से चलते हैं और विशुद्धतः स्थानीय माल से उत्पादन करते हैं, इन सबको बढ़ाने से ही हो सकती है।

चौधरी साहब के अनुसार यदि हमें प्रगति करनी है तो बेरोजगारी और अर्द्धबेरोजगारी को जल्दी से जल्दी खत्म करना होगा। हमें अपनी आर्थिक नीति का उद्देश्य कुल राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ाने से बदल कर, उत्पादक रोजगार बढ़ाने का करना होगा। अधिक रोजगार की व्यवस्था से कुल राष्ट्रीय उत्पादन में तो वृद्धि होगी ही, परन्तु यदि हमें कम रोजगार की व्यवस्था और कुल राष्ट्रीय उत्पादन के ऊँचे रेट के बीच में तथा उत्पादन के कम रेट मगर ज्यादा रोजगार के बीच में चुनाव करना हो, तो बाद वाली स्थिति को चुनना चाहिए।

वित्तीय और औद्योगिक आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने के लिए मौजूदा औद्योगीकरण की प्रणाली छोड़नी होगी और गांधी जी के बताये उस रास्ते पर चलना होगा जो देश के अनुकूल है। उस रास्ते की अपेक्षायें हैं, हाथ से बनने वाले सामानों को मशीनों के जरिये बनाने की कतई मनाही। कोई भी मध्य या भारी आकार का उद्योग अस्तित्व में न आने दिया जाये, जो वह चीजें बनाता हो, जो कुटीर या छोटे उद्योगों के जरिये बनाई जा सकती हों। इसके नतीजे के तौर पर जो बड़ी मिलें इस समय ऐसा सामान बना रही हैं, मसलन कपड़ा मिलें, उनको अपना सामान सिर्फ बाहर बेचने के लिए ही बनाने देना होगा। सरकार विदेशों में प्रतिस्पर्धा करने लायक माल बनाने के लिए उनकी हर सम्भव मदद करेगी मगर यदि फिर भी वे प्रतिस्पर्धा न कर सके और बन्द हो जायें तो छोटे और कुटीर उद्योगों की रक्षा के लिए हम बड़ी मिलों का बन्द हो जाना पसन्द करेंगे।

वैकल्पिक कार्यक्रम जो चौधरी चरणसिंह जी ने देश के सामने रखा है, उसका सार है योजना में कृषि को पहला

दर्जा देना और मशीनों का इस्तेमाल जितनी दूरी तक सम्भव हो रोकना। पहली बात के लिए ग्रामीण विकास पर सर्वाधिक ध्यान देना होगा और दूसरी के लिए आत्मनिर्भरता इस हद तक बढ़ानी होगी कि बिना विदेशी पूँजी और तकनीकी ज्ञान के काम चलाया जा सके।

गरीबी का मतलब है उन चीजों और सुविधाओं की कमी जो मनुष्य की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरी कर सकें। ये चीजें कृषि और गैर कृषि स्रोतों से प्राप्त की जाती हैं। यद्यपि कृषि के विकास को गैर कृषि क्षेत्र के विकास से सहायता तो मिलेगी मगर पहला दूसरे पर निर्भर नहीं करता। जबकि गैर कृषिजन्य स्रोत तब तक विकसित किये ही नहीं जा सकते जब तक कि कृषि स्रोतों का विकास न किया जा चुके, या इसे पहले अथवा साथ-साथ न बढ़ाया जाये। दूसरे शब्दों में जब तक अनाज और कच्चे माल का उत्पादन नहीं बढ़ाया जाता और नतीजे के तौर पर जब तक खेती पर आधारित आबादी गैर कृषि देशों की तरफ नहीं जाती तब तक गैर कृषि क्षेत्र का विकास भी नहीं हो पायेगा। इस सत्य का अहसास अब कम से कम हो जाना चाहिए कि कृषि के लिए अधिक आर्थिक स्रोतों की और उस पर अधिक ध्यान देने की जरूरत है।

तब तक न तो कृषि और न गैर कृषि स्रोतों का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है और न ही आबादी पर नियन्त्रण किया जा सकता है जब तक कि हमारे लोगों को उनके पुराने तरीके, पुराने रुझान और रिवाज़ बदलने को तैयार नहीं किया जाता और जितनी लगन और मेहनत के साथ वे अब काम करते हैं उससे अधिक लगन व मेहनत से काम करने की आदत पैदा नहीं की जाती। भाग्यवाद, जातिवाद आदि को समाप्त करना होगा और परिवार नियोजन को बढ़ावा देना होगा तथा संसदीय लोकतन्त्र पर नई दृष्टि अपनानी होगी।

चौधरी चरणसिंह के आर्थिक विचारों का क्रियान्वयन एक बड़े मजबूत आर्थिक वर्ग के विरुद्ध जाता है जो देश में राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक उच्च वर्ग से मिलकर बना है। इन विचारों का सफल क्रियान्वयन तभी सम्भव है जब देश की गरीबी की रेखा के नीचे की सम्पूर्ण आबादी तथा ग्रामीण जनता को पूरी तरह चेता दिया जाये और ग्राम शक्ति का उदय हो जो निहित स्वार्थों और उच्च वर्गीय शहरी चट्टान को तोड़ कर नवनिर्माण की धारा को बाहर ला सके।

इन नीतियों को लागू करने में एक दशक लग सकता है मगर यह समय एक देश की जिन्दगी में कुछ नहीं होता। इन नीतियों से समता, सम्पन्नता और निजी आज़ादी एक साथ हासिल की जा सकती है। सभी तरह के समाजवाद और सभी तरह के पूँजीवाद से अलग मूलतः गाँधी जी के विचारों पर आधारित यह रास्ता आधुनिक और उपयुक्त रास्ता है।

●

कर्तव्य पालन करने में मनुष्य को प्रत्येक दिन अपने
जीवन का अन्तिम दिन समझना चाहिए।

—संकलित

आर्थिक व राजनीतिक विचार धारा

□ डा० गंगाधर अग्रवाल

विचारधारा की पृष्ठभूमि

चरणसिंह जी ने एक मध्य वर्ग किसान के घर जन्म लिया। होश सँभालते ही उन्हें ग्रामीण जनता की असहाय स्थिति के पर्यावलोकन का अवसर मिला। जमींदारी प्रथा, शासन-तन्त्र, जिसमें ग्रामीण क्षेत्र के मुख्य कार्य-चालक दारोगा जी, तब के पटवारी जी, नहर विभाग के अधिकारी पतरौल व अमीन तथा अंग्रेजी पद्धति की न्याय प्रणाली जो स्वतन्त्र वातावरण में और दूषित होकर पनपी व इसी प्रणाली से पोषित गाँव के धनी साहूकार अंग्रेजी शासन की देन थे। इन सभी के द्वारा ग्रामीण जनता का शोषण होते वे अपनी आंखों से देखते रहे। ग्रामीण वर्ग के आर्थिक उत्पीड़न व शोषण की चीख पुकार में वह पले और बड़े हुए। एक शहर में उत्पन्न और सीमित विकसित बुद्धिजीवी वर्ग को छोड़कर अन्य लोगों के लिए यह सब बातें साधारण थीं और सभी इस स्थिति से परिचित थे; पर अन्यों की भाँति श्री चरणसिंह ने केवल देखा व सुना ही नहीं, पर वस्तु स्थिति का मनन भी किया। उनके हृदय व मस्तिष्क आन्दोलित हो गये। ग्रामीण असहायों का करुण-क्रन्दन उनके कानों में गूँजता रहा। यह गुंजन अब भी उनको उद्वेलित किए है। फलस्वरूप भारतीय कृषि की दयनीय स्थिति पर उनका मनन चलता रहा। इसी सन्दर्भ में उन्हें अर्थशास्त्र विशेषकर कृषि अर्थशास्त्र के अध्ययन में रुचि हो गयी। राजनीति के अध्ययन की भी आवश्यकता हुई, इन विषयों का उन्होंने गहन अध्ययन किया। फिर उन्होंने पाया कि स्वतन्त्रता के तीस वर्ष बीत जाने के बावजूद ग्रामीण क्षेत्र की दशा अधिकांश में ज्यों की त्यों रही। वस्तु स्थिति के मूल्यांकन से तथा दीर्घकालीन अध्ययन व मनन से उनके विचार भी परिपक्व होते गये।

जीवन के संघर्ष तथा राजनीति, इतिहास व अर्थ-शास्त्र विषयों के अध्ययन से उनका विश्वास दृढ़ हो गया कि ग्रामीण जनता के जीवन-स्तर में उन्नति व कृषि-विकास के लिए निम्नांकित कदम अत्यन्त आवश्यक हैं—

१. भिन्न-भिन्न वर्गों द्वारा कृषक व कुटीर उद्योगों वाले व्यक्ति व मजदूर वर्ग के आर्थिक-शोषण की समाप्ति।
२. कृषि, कुटीर तथा सभी ग्रामीण उत्पादनों की दरों में वृद्धि।
३. सबको रोजगार और आय के साधन।
४. उपरोक्त ध्येय की प्राप्ति के लिये ग्रामीण जनता का संगठन व शासन में उनका उचित प्रतिनिधित्व।
५. ग्राम से पूँजी, प्रतिभा व हृष्ट-पुष्ट जन समुदाय के पलायन पर रोक व ग्राम विकास में राज्य द्वारा ऐसे प्रोत्साहन, जिनसे ग्रामीण क्षेत्र में सदियों से पूँजी व प्रतिभा के निर्गमन द्वारा हुई क्षति की पूर्त्ति तथा भविष्य में ऐसी क्षति न होने का उचित प्रबन्ध।
६. न्याय-प्रणाली में उचित सुधार, जिससे सदैव सबल वर्ग के पोषण की अपेक्षा निर्बल वर्ग को भी न्याय की प्राप्ति।

उपरोक्त परिमाण ही उनके आर्थिक विचारों का आधार स्तम्भ है। उनका राजनीतिक जीवन व विचारधारा भी उपरोक्त आर्थिक एवं सामाजिक सुधारों की भावना से प्रेरित व पोषित है। उन्होने यह भली-भाँति महसूस किया है कि राजनीतिक शक्ति व शासन-अधिकार के बिना किसान व अन्य पद-दलित वर्गों को राहत नहीं पहुँचायी जा सकती। उनके सामाजिक कार्यकर्त्ता तथा एक नये राजनीतिक दल के नेता के रूप में उभरने की यही भूमिका है।

मेरा उनके निकट सम्पर्क में आने का कारण भी कृषि अर्थशास्त्र के विषय में उनकी गहरी रुचि व अध्ययन ही है। जहाँ तक मैं समझ पाया हूँ उनके जीवन का प्रमुख ध्येय किसान व ग्रामीण जनता को सुखी व उच्चतर बनाना है। उनका दृढ़ विश्वास है कि ग्रामीण जनता, अपने आर्थिक विकास तथा समाज में अपने न्यायोचित स्थान की प्राप्ति के लक्ष्यों को निजी सबल संगठन द्वारा ही साकार कर सकती है।

वे आँकड़ों को विशेष महत्व देते हैं। उन्हीं के आधार पर यह स्पष्ट है कि भारत गाँवों में रहता है तथा गाँवों में छोटी जोत व बिना जोत के लोगों का बाहुल्य है। इसलिए उनकी दृष्टि में ग्रामोत्थान विशेष कर निम्न वर्ग का उत्थान तथा देश का उत्थान एक दूसरे के पर्याय ही हैं।

शोषण व भ्रष्टाचार-निवारण

उत्तर प्रदेश में चौधरी चरणसिंह के राजस्व मंत्रित्व-काल में पूरे देश में सर्वप्रथम जमींदारी उन्मूलन दृढ़तापूर्वक सम्पन्न हुआ; यद्यपि इस प्रदेश में जमींदार वर्ग बहुत प्रभावशाली था। जमींदारी-प्रथा के अन्त होने पर जमींदार वर्ग द्वारा कृषक वर्ग का आर्थिक शोषण समाप्त हुआ तथा उसे समाज में बराबरी का दर्जा प्राप्त हुआ। उसको आजादी का एहसास हुआ और एक स्वतन्त्र व्यक्ति की तरह जीवन-यापन का अधिकार प्रथम बार प्राप्त हुआ। चरण सिंह जी ने ही देश में सर्व प्रथम आयकर के सिद्धान्त को कृषि-राजस्व में भी लागू किया, जिसके अनुसार निम्न आय के वर्ग को अर्थात् ३।१।८ एकड़ तक वालों को राजस्व से छूट दी गयी।

अंग्रेजों द्वारा थोपी गई अजनवी न्याय-प्रणाली के माध्यम से तथा राजस्व विभाग के अधिकारी–जिनका ग्रामीण क्षेत्र में पटवारी प्रतिनिधि है, नहर विभाग के पतरौल व अमीन तथा पुलिस–द्वारा ग्रामीण जनता का शोषण होता रहा। पटवारियों के भ्रष्टाचार को रोकने तथा उनसे कृषक वर्ग को राहत दिलाने के श्री चरणसिंह जी के साहसिक प्रयत्न सदैव याद किए जायेंगे। उन्होंने ही पटवारी को लेखपाल अर्थात् कृषि सम्बन्धी आंकड़े के एक अधिकारी की संज्ञा प्रदान की।

इन प्रयत्नों के बावजूद उन्होंने महसूस किया कि जब तक कृषक व अन्य ग्रामीण संगठित न होंगे वे आर्थिक व सामाजिक न्याय से वंचित रहेंगे। अतएव उन्होंने भारतीय लोकदल का निर्माण किया और उसके संगठन में अपना जीवन समर्पित किया और दल को सफलता भी प्राप्त हुई।

कदाचित श्री चरणसिंह स्वयं भी दल की इस भूमिका से स्पष्ट अवगत न हों और चाहे वे इसकी राजनीतिक आधार को ही अधिक महत्व देते हों, लेकिन यह ऐतिहासिक सत्य है कि भारतीय लोक दल ने जनता पार्टी के विलय के उपरान्त अपने कृषि-प्रधान अस्तित्व की छाप जनता पार्टी पर छोड़ी है। आगे भी एक ऐसे स्वतन्त्र कृषक सगठन की, जो दल के अन्दर और बाहर देश की आर्थिक एवं सामाजिक नीतियों में अपना प्रभाव रख सके, आवश्यकता रहेगी। ऐसे सगठन की अगुआई श्री चरणसिंह ही कर सकते हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका में किसान-संगठन तथा अन्य देशों की भी किसान-संस्थायें प्रायः राजनीतिक संस्थायें नहीं है। चुनाव में वे अपने उम्मीदवार खड़े नहीं करतीं, पर उनके समर्थन के लिए प्रत्येक राजनीतिक दल आपस में होड़ करते हैं, जिससे कि उनकी उचित माँगों को प्रत्येक दल का समर्थन प्राप्त रहता है। वैसे ही भारत में कृषि-प्रधान देश होने के कारण ऐसे संगठन की आवश्यकता सदा रहेगी, तभी किसान अपने न्यायिक अधिकारों की प्राप्ति व रक्षा कर सकता है और अपनी आवाज बुलन्द कर सकता है। शोषण के विरोध में ग्रामीण जनता संगठन के समानान्तर मजदूर संघ का भी मुख्य लक्ष्य अपने आर्थिक हितों की रक्षा करना ही है। सही अर्थ में इन संस्थाओं को वर्ग संघर्ष

की भूमिका न देकर शोषण करने वाले सबल दलों से, अपने आर्थिक व सामाजिक हितों के संरक्षण के कर्तव्यों के पालन की ही प्रमुखता मिलनी चाहिये। इनके अस्तित्व का सहकारी समितियों की भाँति यही एक न्यायपूर्ण औचित्य है। ग्रामीण सहकारी समिति का प्रादुर्भाव महाजन प्रथा द्वारा शोषण समाप्त करने के लिये ही हुआ था। सहकारी आन्दोलन को आर्थिक आन्दोलन के रूप में ही देखा जाता है; उसे राजनीतिक संज्ञा देना दुस्साहस होगा। उसी भाँति कृषक संघ व मजदूर संघ के ध्येय वास्तव में उनकी आर्थिक भूमिका अदा करने में ही हैं। वैसे राजनीति व अर्थशास्त्र दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं। आज के युग में तो यह प्रत्यक्ष है कि किसी भी आर्थिक नीति, पूँजीवाद, समाजवाद आदि का पोषण राजनीतिक समर्थन के बिना असम्भव है।

यदि भारतीय लोकदल में जातिवाद का आभास रहा है, तो इसका कारण है कि अपने देश में जाति-व्यवसाय एवं आर्थिक-स्तर में घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह सदियों का अभिशाप है। कतिपय अपवादों के साथ कृषक समुदाय, मजदूर वर्ग व दलित वर्ग की जातियों में निर्धनता का बाहुल्य है एवं अन्य जातियों में धनिक वर्ग अधिक हैं। परन्तु निश्चय ही कालान्तर में इस दल को कृषक, मजदूर, दलित वर्ग व हरिजनों को आर्थिक, सामाजिक व न्यायिक अधिकारों के सरक्षण की भूमिका वाला बनकर ही विकसित होना पड़ेगा। आर्थिक प्रगति के प्रयासों के आगे जातिवाद का ह्रास हो जायेगा।

इस लेख में अभी तक आर्थिक नीतियों की नकारात्मक क्रियाओं की ही चर्चा की गयी है अर्थात् जमींदारी उन्मूलन, आर्थिक शोषण की समाप्ति, भ्रष्टाचार-निवारण इत्यादि। अब श्री चरणसिंह की सकारात्मक (पाज़िटिव) नीतियों का उल्लेख प्रस्तुत है।

सत्तारूढ़ जनता दल ने कृषि विकास को प्राथमिकता दी है। पंचवर्षीय योजना के व्यय का ४० प्रतिशत कृषि उन्नति के लिए सुरक्षित किया गया है। ग्रामोन्मुख आर्थिक विकास योजनाओं, ग्रामीण औद्योगीकरण, कुटीर धन्धों व गृह उद्योगों पर विशेष बल दिया गया है। देश की ८० प्रतिशत जनता ग्रामीण क्षेत्रों में है। इनमें ४५ प्रतिशत गरीबी का शिकार हैं। उनके रोजगार की व्यवस्था, आय-वृद्धि व आर्थिक-विकास पूर्णतः न्याय-संगत हैं।

इन नीतियों के निर्धारण में श्री चरणसिंह ने विशेष भूमिका निभाई है, जो उनके जीवन की महान उपलब्धि मानी जाएगी। कुछ लोग इनको भारी उद्योगों का विरोधी मानते हैं, पर सत्य इतना ही है कि उनका कहना है-जिन वस्तुओं व उपकरणों का कुटीर व गृह उद्योगों में उत्पादन किया जा सकता है वह इन्हीं उद्योगों के लिए सुरक्षित हो जायें। उनमें भारी उद्योग अथवा पूँजी-प्रमुख तकनीक की आवश्यकता नहीं है। देश में श्रम का बाहुल्य है अतएव इस उपादान के उचित उपयोग के लिए उन उद्योग-प्रणालियों को प्रोत्साहन मिलना आवश्यक है, जो श्रम-प्रमुख हों।

भारी उद्योगों में पूँजी का बाहुल्य होता है। देश में उचित मात्रा में पूँजी का अभाव है। अतएव उक्त विचारधारा न्याय संगत ही है। एक विशेष दल के अध्ययन द्वारा यह तथ्य प्रकाश में आया है कि दामोदर घाटी विकास योजना में अरबों रुपये के व्यय के बावजूद उस क्षेत्र में बसे आदिवासियों की किसी प्रकार की आर्थिक प्रगति नहीं हुई है। जितना धन लगा है, उसके अनुपात में बहुत ही थोड़े लोगों को रोजी मिली है।

पूँजीवादी विचारधारा में कार्यक्षमता व कुशलता की आड़ लेकर भारी उद्योगों का समर्थन किया जाता है। पर अब पाश्चात्य देशों में भी गाँधी-दर्शन के समर्थक एवं चिन्तक हैं। इस दिशा में "लघु ही सुन्दर है" के रचयिता डा० श्यूमेकर का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

अर्थशास्त्र का यह प्रारम्भिक सिद्धान्त है कि उत्पादन आदानों में जो आदान स्वल्प-मात्रा में हों, उनकी क्षमता का अधिकतम उपयोग हो। उदाहरणतः कृषि के लिये भूमि सीमित है। अतएव इसकी प्रति इकाई से अधिकतम उत्पादकता का लक्ष्य होना चाहिये। चरणसिंह ने इसी सिद्धान्त को अपनी आर्थिक नीति का आधार बनाया है। उनके कटु से कटु आलोचक भी उनकी इस बात से सहमत हैं कि देश

की वर्तमान स्थिति में लोगों को रोज़ी देने, अधिकतम रोजगार प्रदान करने और उनकी क्रयशक्ति बढ़ाने के लिये जिस पर औद्योगिक विकास निर्भर है, श्रम प्रमुख तकनीकी को प्राथमिकता देना आवश्यक है। पूँजी के अभाव में पूँजी प्रमुख तकनीकी को श्रेय देना तर्कसंगत नहीं होगा।

श्री चरणसिंह की 'अर्थनीति' की देश के प्रमुख अर्थशास्त्री डा० बी० के० आर० वी० राव ने जो आलोचना की है, वह इस बात पर आधारित है कि श्रम-प्रमुख तकनीकी अपनाने से उत्पादन अधिशेष कम हो जायेगा और लोगों की बचत के विनियोजन हेतु आकर्षित करने के लिये अनिवार्य नियम बनाने होंगे, जो कि गणतन्त्र प्रणाली के अनुकूल नहीं है। इस प्रकार का सरलीकरण और निष्कर्ष युक्तिपूर्ण नहीं है। सत्य तो यह है कि जो जनशक्ति उपयोग में नहीं है, वह वर्तमान उत्पादन के उपभोग में साझीदार है फलतः इस तरह के अधिशेष में कमी पहले से ही आ रही है, यदि इसे श्रम-प्रमुख तकनीकी द्वारा उपयोग में लाया गया, तो आंशिक रूप से उत्पादन में वृद्धि होने से अधिशेष में भी वृद्धि होगी न कि ह्रास। जनसख्या की बढ़ोत्तरी का नियन्त्रण ही जनसख्या की वृद्धि द्वारा अधिशेष के ह्रास को रोकने का एकमात्र उपाय है। श्री चरणसिंह ने देश के आर्थिक-विकास का एक आधारभूत ढाँचा प्रस्तुत किया है। इसे सुसज्जित करना एक व्यक्ति का दायित्व न होकर भिन्न-भिन्न क्षत्रों के कार्यकर्त्ताओं का सामूहिक दायित्व है। इस ढाँचे के छिद्रान्वेषण की अपेक्षा उचित तो यही होगा कि इसे सर्वाङ्गीण बनाने के लिये व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत किये जायें। वरिष्ठ अर्थशास्त्री डा० राव का यह भी कथन है कि देश में श्रम-प्रमुख व पूँजी-प्रमुख दोनों ही प्रकार की तकनीकी की मिश्रित प्रणाली उपयुक्त है। श्री चरणसिंह द्वारा अनुमोदित आर्थिक नीति इससे कहीं आगे है। वह तो इस नीति के समर्थक हैं कि कालान्तर में जब देश में आर्थिक विकास इस सीमा तक पहुँच जाये कि श्रमिकों की कमी महसूस होने लगे, तो यन्त्रीकरण द्वारा उत्पादकता में वृद्धि की जानी चाहिये, जिससे आर्थिक-समृद्धि अधिकतम की जा सके। इस पर भी उनकी यह आलोचना कि उनकी आर्थिक नीति, देश के आर्थिक विकास की अवरोधक है, हास्यास्पद ही मानी जायेगी।

श्री चरणसिंह साधारण से साधारण व्यक्ति के सुझाव का आदर करते हैं तथा अपनी भूल मानने व सुधारने के लिये सदैव तत्पर रहते हैं। एकबार जबकि जमींदारी उन्मूलन के अन्तर्गत कृषक-वर्ग को भूमि स्वामित्व देने के लिये लगान के दस गुना की वसूली के अभियान को कार्यान्वित करने में वे सफल हो चुके थे, मेरे द्वारा संकलित कृषि सम्बन्धी आय-व्यय के आँकड़े देखने का उन्हें अवसर मिला। जब उन्होंने भलीभाँति सुनिश्चित कर लिया कि आँकड़ों में त्रुटि नहीं है, तब उन्होंने अपने आप कहा कि मैंने दस गुना लगान वसूली की योजना इसलिये सोची थी कि कृषक वर्ग बहुत समृद्ध हो गया है। एक ओर वह भूमि का स्वामी बन जायेगा और दूसरी ओर देश में जो मुद्राप्रसार का प्रकोप है, वह दस गुना जमा कराने से अपने आप समाप्त हो जायेगा। पर इन आँकड़ों द्वारा तो यह प्रतीत होता है कि मेरे यह विचार तर्कसगत नहीं थे। गोल्डस्मिथ की इस उक्ति से कि "स्वामित्व का अधिकार प्राप्त होने से किसान बालू को भी स्वर्ण में परिवर्तित कर सकता है।" इस विचार से वह बहुत प्रभावित हैं, पर उत्पादन के साधनों के निजी क्षेत्र में उपयोग तथा उसके लाभांश पर सामाजिक नियन्त्रण के पक्ष में हैं।

इस देश में कृषि अर्थशास्त्र का विकास बहुत देर से हुआ है और इस विषय की आधारशिला भारतीय सन्दर्भ में अच्छी तरह निर्मित नहीं हो पाई है। अमेरिका ऐसे औद्योगिक शहर–प्रधान देश में कृषि अर्थशास्त्रज्ञों का प्रादुर्भाव साधारण कृषक परिवारों से हुआ, उन्हें कृषि का समुचित आवश्यक ज्ञान था। इसके विपरीत भारत के अधिकाश शिखर के वरिष्ठ कृषि-अर्थशास्त्रज्ञ शहर में पले व बड़े हुये हैं। ग्रामीण जीवन से उनका सीधा नाता नहीं रहा। कृषि-विज्ञान से वे सर्वथा अनभिज्ञ रहे तथापि विश्वविद्यालयों में अर्थशास्त्री व सांख्य बन गये। ये पाश्चात्य देशों की आर्थिक स्थितियों में विकसित आर्थिक सिद्धान्तों के अनुयायी-मात्र की भूमिका अदा कर रहे हैं। कुछ ऐसे भी कृषि-अर्थशास्त्री हैं, जिन्होंने अमेरिका में कृषि-अर्थशास्त्र का प्रशिक्षण प्राप्त किया है। इस प्रशिक्षण में उत्पादन प्रक्रिया विश्लेषण व प्रारूप निर्माण की प्रमुखता थी। भारतीय कृषि-समस्या का निरूपण उन आधारों पर ढूँढ़ना, बिना बुनियाद के रेत का महल बनाने सा है। इस प्रकार के प्रशिक्षित अधिकांश कृषि अर्थशास्त्री इन उल्लिखित प्रणालियों का उपयोग आज भी

सम्मानप्रद मानते हैं। इन दोनों प्रणालियों के दोष यह हैं कि किसी आदान का उत्पादन में योग निकालने के लिये यह मानना पड़ता है कि अन्य आदान की मात्रा स्थिर है।

कृषि में आदानों की मात्रा में सामञ्जस्य एक दूसरे के सम्बन्ध पर आधारित है। उदाहरणतः यदि खाद की मात्रा बढ़ाई जाती है तो सिंचाई भी अधिक करनी होगी। ऐसा न करने से उत्पादन में वृद्धि की अपेक्षा कमी आयेगी। बीज की मात्रा भूमि की इकाई से सम्बद्ध है। गणतीय तरीकों के उपयोग के लिये पर्याप्त और सही आँकड़े आवश्यक हैं। देश में कृषि-अर्थशास्त्र के वर्तमान अनुसन्धान की स्थिति में ऐसी सूचना का अभाव है। इन कारणों से इन गणतीय विश्लेषणों का उपयोग सीमित रूप में ही वांछित है।

पर विदेश में प्रशिक्षित नई पीढ़ी के भारतीय कृषि अर्थशास्त्रज्ञ उत्पादन प्रक्रिया व प्रारूप द्वारा आर्थिक विश्लेषण का अधिक उपयोग करते हैं। गणतीय विश्लेषणों को अपनाते हैं। उपरोक्त दोषों के कारण इन विश्लेषणों द्वारा भारतीय कृषि-समस्या का सही निदान नहीं किया जा सकता। इससे देश में कृषि-अर्थशास्त्र के विकास को सही दिशा अभी तक नहीं मिल पाई है। इसके विपरीत श्री चरणसिंह ने कृषि-अर्थशास्त्र की पुस्तकों का ही अध्ययन नहीं किया, वरन् भारतीय कृषि-प्रणाली व ग्रामीण अर्थशास्त्र पर गहन मनन किया तथा कृषि एवं राजस्व मन्त्री के नाते बहुमूल्य अनुभव भी प्राप्त किये। वह अपने को अब भी कृषि-शास्त्र का एक विद्यार्थी ही मानते हैं। इतने व्यस्त होते हुये भी अध्ययन, मनन एवं चिन्तन उनका स्वभाव बन गया है।

गाँधी जी के अनुयायी होने के नाते श्री चरणसिंह को सत्य में अडिग विश्वास है। वह जिसे सत्य समझते हैं, उसके कहने में एवं समर्थन में, उन्हें कोई हिचकिचाहट तथा भय नहीं होता।

पंडित नेहरू जो अपने राजनीतिक जीवन के चरम उत्कर्ष पर थे, उनकी विचारधारा का विरोध करने का साहस इने-गिने लोग ही कर सकते थे। पर चरणसिंह ने अपने युक्ति-संगत भाषण द्वारा नागपुर के खुले अधिवेशन में सहकारी खेती की व्यावहारिकता को असंगत सिद्ध कर दिया; यद्यपि कि नेहरू जी जोरदार शब्दों में इस प्रणाली का डटकर प्रचार कर रहे थे। भारत की राजनीति पर नेहरू की पूर्णतः छाप रहने के कारण चरणसिंह को राजनीतिक क्षेत्र में कुछ काल के लिये एक नगण्य इकाई के रूप में सन्तोष करना पड़ा, पर उन्होंने अपना राजनीतिक स्थान पुनः प्राप्त करने हेतु अपने आधारभूत सिद्धान्तों को कभी नहीं छोड़ा। यह उनके महान् व्यक्तित्व का परिचायक है, जबकि बहुत से लोग उनके इस गुण को हठ की संज्ञा प्रदान करते हैं।

जनता शासन, जिसमें उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है, के एक वर्ष के कार्यकलापों का मूल्यांकन करना तो अभी सम्भव नहीं है, लेकिन ऐसा विश्वास सहज में किया जा सकता है कि यदि श्री चरणसिंह द्वारा प्रतिपादित अर्थनीति हमारे देश की सामाजिक और आर्थिक विकास का आधार बन सकी, तो भविष्य उज्ज्वल होगा।

'सत्यमेव जयते'

●

आर्थिक विकास की नवीन प्राथमिकताएँ

□ डा० डी० एस० अवस्थी

यह निर्विवाद है कि किसी भी राष्ट्रीय आर्थिक-विकास प्रक्रिया का लक्ष्य जन-कल्याण होना चाहिए। विकास साधन है और मानवीय सुख एवं कल्याण साध्य। विकास-प्रक्रिया का संचालन इस प्रकार होना चाहिये, जिससे सर्व साधारण की दशा में सुधार हो। व्यक्तियों एवं संस्थाओं की राजनीतिक तथा सामाजिक मान्यताओं और आस्थाओं की भिन्नताओं का स्वरूप एवं आकार कुछ भी हो, पर इसमें राष्ट्रीय मतैक्य है कि आर्थिक विकास की नीति की साथकता का मूल्यांकन इस आधार पर होना चाहिए कि वह निर्धनता, विषमता तथा बेरोजगारी के अभिशाप से समाज को मुक्त कराने में कहाँ तक सफलता प्राप्त करने में समर्थ है। आर्थिक नीति के इस कल्याणवादी मापदण्ड को स्वीकार करने में सभी अर्थ-शास्त्री और समाज-नेता एकमत हैं।

विकास का मापदण्ड

आर्थिक विकास के इस कल्याणवादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन चौधरी चरणसिंह ने अपनी पुस्तक 'भारत की अर्थनीति– गाँधीवादी रूपरेखा' में निम्न प्रभावपूर्ण शब्दों में किया है :—

"किसी अर्थनीति या राजनीति की गुणवत्ता का माप दण्ड यह है कि वह अपने पीड़ित, दुर्बल, बेरोजगार, मूक नागरिकों का उद्धार कैसे करती है और उन सभी लोगों को जो असहाय हैं और जिन्हें दूसरे दिन रोटी का सहारा नहीं है, कैसे राहत पहुँचाती है ? भारत में राजनीतिक नेतृत्व की परख अब उसके क्रांतिकारी नारों से नहीं होगी, बल्कि इन बेचारों के लिए किये गये काम से होगी।"

चौधरी जी द्वारा प्रतिपादित इस क्रांतिकारी विकास मापदण्ड में समाजवाद तथा साम्यवाद की प्रगतिशीलता की आत्मा समाहित है। वास्तव में प्रगतिशीलता का ऐसा व्यवहारिक रूप राष्ट्रीय आर्थिक-विकास में राष्ट्रीय सामूहिक-प्रयास का केन्द्र बिन्दु हो सकता है।

राष्ट्रीय आर्थिक विकास का केन्द्र-बिन्दु अब सामान्य व्यक्ति होना चाहिए। इन करोड़ों असहाय भारतीयों को जिन्हें गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी तथा शोषण की लम्बी यातनायें झेलनी पड़ी हैं, अब विकासक्रम का लक्ष्य मानना पड़ेगा। यदि राजनीतिक सीमित हितों एवं उद्देश्यों से ऊपर उठकर राष्ट्रीय-हित में चिंतन किया जाय, तो निश्चय ही चौधरी जी के उपर्युक्त मापदण्ड को सभी स्वीकार करेंगे। यह प्रगतिशीलता का मूर्तिमान प्रतीक है। प्रगतिशीलता इस मापदण्ड में अपना सही रूप देखती है। करोड़ों असहाय व्यक्तियों को विकास की नवीन दिशाओं का दर्शन होता है। निहित स्वार्थों में विकास के इस नवीन कल्याणकारी मापदण्ड की चुनौती का सामना करने की शक्ति तथा सार्मथ्य नहीं है।

अतीत के आर्थिक विकास का मूल्यांकन

आर्थिक विकास के अतीत का मूल्यांकन आवश्यक है ;

जिससे हम भविष्य में विकास की नीतियों का सही निर्माण एवं उनका कार्यान्वयन कर सकें। राजनीतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति के उपरान्त आर्थिक स्वतन्त्रता का संग्राम प्रारम्भ हुआ। राजनीतिक स्वतन्त्रता ने आर्थिक स्वतन्त्रता की पृष्ठ-भूमि का निर्माण किया। राजनीतिक दासता तथा शोषण से मुक्ति पाकर आर्थिक दासता तथा शोषण के विरुद्ध महान अभियान प्रारम्भ हुआ। नियोजन-बद्ध आर्थिक-विकास का कार्यक्रम देश में १ अप्रेल सन् १९५१ से प्रारम्भ हुआ, जब देश में प्रथम पंचवर्षीय योजना का श्री गणेश हुआ। देश में चार पंचवर्षीय योजनायें और तीन वार्षिक योजनायें पूरी हो चुकी हैं और पाँचवी पचवर्षीय योजना अपने अंतिम चरण में है। स्वाभाविक है कि राष्ट्रीय सम्पत्ति की बहुत बड़ी राशि के विनियोजन से विकास के कुछ भौतिक परिणाम अवश्य होंगे। लोहा, सीमेंट, बिजली तथा अनेक अन्य औद्यो-गिक प्रतिष्ठानों की स्थापना होगी। इन वस्तुओं का उत्पा-दन बढ़ेगा। राष्ट्रीय निवल उत्पाद में वृद्धि होगी। परन्तु मौलिक प्रश्न है क्या विकास अपने आदर्शों को प्राप्त करने में सहायक सिद्ध हुआ है? क्या भौतिक अववृद्धियाँ सामा-जिक अनिवार्यताओं एवं आकाँक्षाओं के अनुरूप हुई हैं? क्या इसकी दिशाएं वही रहीं हैं, जिसकी राष्ट्र को आशा रही है?

हमें विकास का मूल्याँकन उसी मापदण्ड पर करना होगा, जिसकी विवेचना हम अभी कर चुके हैं अर्थात् विकास में दुर्बल तथा असहाय वर्ग की स्थिति में कहाँ तक सुधार हुआ है। अर्थात् विकास ने सामान्य जनकल्याण की प्रतिस्थापना में कहाँ तक सफलता प्राप्त की है। इस मापदण्ड पर ही आर्थिक विकास का सही-निष्पक्ष मूल्याँकन हो सकता है। व्यावहारिक रूप से इस मूल्याँकन के तीन आधार यहाँ पर देना उपयुक्त होंगे। प्रथम निर्धनता का अभिशाप, द्वितीय बेरोजगारी की स्थिति तथा तृतीय आर्थिक विषमताओं का स्वरूप।

निर्धनता का अभिशाप

नियोजन की प्रक्रिया से निर्धनता का उन्मूलन नहीं हो सका। यह कष्ट का विषय है कि आज भी लगभग भारत की आधी जनता गरीबी के जाल में फँसी हुई है। इस सम्बन्ध में उपलब्ध अध्ययन शोध सामग्री निर्धनता की भीषणता की ओर संकेत करती है। दान्डेकर तथा रथ के अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि सन् १९६७-६८ में १५ रुपये मासिक से कम उपभोग करने वाले ग्रामीण क्षेत्र में १६६.४ मिलियन लोग थे। इसी वर्ष नगरों में २० रुपए मासिक से कम खर्च करने वाले ४९ मिलियन लोग थे। इस आधार पर शहरी क्षेत्र में ५० प्रतिशत निर्धन तथा ग्रामीण क्षेत्र में ४० प्रतिशत निर्धन थे। प्रो० बरधन के अध्ययन के अनुसार १५ रुपये मासिक से कम उपभोग करने वाले २२० मिलियन लोग थे, जो ग्रामीण जनसंख्या का ५३ प्रतिशत थे। श्री ओझा के अध्ययन के आधार पर स्पष्ट है कि वर्ष १९६७-६८ में १५ से १८ रुपये मासिक उपभोग वाले ७० प्रतिशत थे और उनकी संख्या २८९ मिलियन थी। डी० कास्टा के अध्ययन ने तो यह शर्मनाक सत्य स्पष्ट किया कि वर्ष १९-६३-६४ में ६१ मिलियन लोग ऐसे थे, जो अत्यधिक निर्धनता के कुचक्र में फँसे हुए थे। निर्धनता सम्बन्धी तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट रूप से सिद्ध है कि परिमाणात्मक दृष्टि से निर्धन लोगों की सख्या में निरंतर वृद्धि होती गई है और प्रतिशत रूप में भी निर्धनता में कमी नहीं हुई है। यह एक अत्यधिक कष्टदायक सत्य है, जो हमारी विकास आस्था को गहरी ठेस पहुँचाता है। यदि नियोजित विकास-प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप निर्धन लोगों की संख्या में वृद्धि हो और देश की सम्पूर्ण जनसंख्या का लगभग आधा भाग निर्धनता के अभिशाप से ग्रसित रहे, तो यह निश्चय ही लज्जाजनक है और हमारे राष्ट्रीय मनोबल तथा चरित्र को गिराता है। यह हमें विवश करता है कि हम सम्पूर्ण विकास-प्रक्रिया और सम्बन्धित नीतियों पर मौलिक चिंतन करें, जिससे समस्या का समाधान हो। हमें विकास की नवीन प्राथमिकताओं को खोजना पड़ेगा।

बेरोजगारी का ताण्डव

एक देश के मनोबल को गिराने में जितना उत्तरदायित्व बेरोजगारी का है, उतना शायद किसी अन्य कारक का नहीं। देश में व्याप्त व्यापक निर्धनता का भी कारण बड़े पैमाने की बेरोजगारी है। किसी भी आर्थिक विकास का लक्ष्य बेरोजगारी उन्मूलन होना चाहिए। समस्त उपलब्ध मानवीय श्रम-शक्ति का अधिकतम लाभकारी प्रयोग होना चाहिए।

यदि विकास नीति में रोजगारमूलक नीति को प्राथमिकता न मिलेगी, तो यह निश्चय ही दुर्भाग्यपूर्ण होगा। अतीत की यह मान्यता कि विकास क्रम स्वयं रोजगार मूलक होगा, अब असत्य सिद्ध हुई है। राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि की दर तथा रोजगार साधनों में वृद्धि की दर में बड़ी विषमता दिखलाई पड़ती है। उदाहरण के लिए आई० एल० ओ० ने कुछ महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में लाए हैं। सन् १९६३ आधार वर्ष की तुलना में सन् १९६९ में विभिन्न राष्ट्रों की राष्ट्रीय उत्पादन तथा रोजगार वृद्धि की दरों की स्थिति इस प्रकार थी –

राष्ट्र	राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि प्रतिशत	रोजगार में वृद्धि की दर
कनाडा	४७	१८
अमरीका	४६	१९
पश्चिम जर्मनी	४७	३
इंगलैन्ड	२६	०
जापान	१२७	१४
भारत	१५	९

इससे यह सत्य उजागर होता है कि आर्थिक विकास को कल्याणकारी और दुर्बल वर्ग के लिए सहायक बनाने के लिए आवश्यक है कि रोजगार-सृजन की क्षमता को अत्यधिक महत्व दिया जाय। यह सत्य भारत जैसे श्रम-बाहुल्य राष्ट्रों के लिए और अधिक उपयुक्त है। परन्तु खेद है कि उत्पादन वृद्धि की उन प्रक्रियाओं का समुचित प्रयोग नहीं हुआ, जिससे श्रम साधन का उपयोग होता और बेरोजगारी की समस्या का समाधान होता। रोजगार-मूलक विकास की नीति की उपेक्षा का स्पष्ट परिणाम यह हुआ कि बेरोजगारी में अनवरत रूप से वृद्धि होती गई, जैसा निम्न आँकड़ों से स्पष्ट है –

नियोजन अवधि	बेरोजगारों की संख्या मिलियन में	बेरोजगारी प्रतिशत
प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्त में	५.३	२.९
द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त में	७.१	३.६
तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्त में	९.६	४.५
तीन वार्षिक योजनाओं के अन्त में	२३.०	९.६

भगवती कमेटी ने बेरोजगारी का अनुमान देते हुए लिखा कि सन् १९७१ में १८.१ मिलियन श्रमिक बेरोजगार थे जिसमें से १६.१ मिलियन ग्रामीण क्षेत्र में तथा २.६ मिलियन शहरी क्षेत्र में थे। इस प्रकार १० प्रतिशत श्रम-शक्ति का उपयोग नहीं हुआ। यदि छिपी हुई ग्रामीण बेरोजगारी तथा अर्द्ध-रोजगारी की स्थिति का वास्तविक मूल्याँकन किया जाय, तो यह स्थिति और अधिक भयावह होगी। उपर्युक्त आँकड़े यह स्पष्ट करते हैं कि नियोजनकाल में उत्तरोत्तर बेरोजगारी में वृद्धि होती गई।

आर्थिक केन्द्रीयकरण की विषमता

आर्थिक विकास का एक अन्य मूल्याँकन आधार है– वितरण व्यवस्था का स्वरूप। यदि विकास की प्रक्रिया से आर्थिक शक्ति का विकेन्द्रीयकरण होता है तथा आय एवं सम्पत्ति-साधनों का समान वितरण होता है, तो विकास नीति का स्वागत किया जायेगा। इसके विपरीत यदि धन एवं आय का केन्द्रीयकरण होता है और गरीब तथा अमीर का अन्तर-पाट चौड़ा होता है, तो हम निश्चय ही विकास प्रक्रिया को आपत्तिजनक समझेंगे। इस मापदण्ड के आधार पर जब हम भारतीय आर्थिक विकास का मापांकन करते हैं, तो हमें बढ़ती हुई विषमताएं दिखलाई पड़ती हैं। विकास के लाभों को कुछ समृद्ध लोगों ने हथिया लिया है। उदाहरण के लिए भारत के २० बड़े निजीप्रतिष्ठानों की शक्ति में अनवरत रूप से वृद्धि होती गई जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है–

वर्ष	कुल परिसम्पत्ति (करोड़ों में)
१९६३-६४	१३२५.७
१९६६-६७	२३८५.९
१९७२-७३	३५१५ ६
१९७५-७६	४९९४.२

इस प्रकार स्पष्ट है कि बड़े निजी एकाधिकारी प्रतिष्ठानों ने शक्ति का केन्द्रीयकरण कर रक्खा है। केवल बिड़ला के समूह की परिसम्पत्ति इस अवधि में २८२.९ करोड़ रुपये से बढ़कर १०६४.६ करोड़ रुपये हो गई है। इसमें यह भी हास्यास्पद तथ्य प्रकट होता है कि यह सभी कुछ समाजवाद के नारों के सन्दर्भ में हुआ। इन आर्थिक शक्ति के केन्द्रीय-

करण ने सरकार के सभी नियमन-प्रयासों को निष्फल कर दिया। बड़ी मात्रा में करों की चोरी, एकाधिकारी शक्ति नियमन-व्यवस्था की अकुशलता तथा व्यापक भ्रष्टाचार ने आर्थिक विषमताओं को और अधिक बढ़ा दिया। देश में समानान्तर अर्थ-व्यवस्था का जन्म हुआ तथा खुलकर विकास हुआ।

समस्याओं का समाधान – विकास की नवीन प्राथमिकताएँ

निर्धनता, बेरोजगारी तथा आर्थिक विषमताओं में वृद्धि के परिप्रेक्ष में ही विकास की नवीन प्राथमिकताओं के निर्धारण की आवश्यकता का अनुभव किया गया। चौधरी चरणसिंह ने अपनी पुस्तक 'भारत की अर्थनीति' में स्थिति का विश्लेषण करते हुए स्पष्ट कहा कि "आर्थिक क्षेत्र की असफलताओं के दो मुख्य कारण हैं– 'उद्योग व कृषि के मध्य वित्तीय साधनों का गलत वितरण और बड़ी मशीनों का अपनाया जाना।' यह कथन पूर्ण सत्य है और यदि हमें अपने आर्थिक-विकास की प्रक्रिया से निर्धनता, बेरोजगारी तथा विषमताओं को मिटाना है, तो ऐसे दर्शन को अपनाना पड़ेगा जिसका व्यावहारिक रूप ऐसा होगा, जिसमें कृषि को प्राथमिकता दी जायेगी, श्रममूलक लघु तथा कुटीर उद्योगों का विकास किया जायेगा, जिससे भारत की अपार मानव-शक्ति का उत्पादन में प्रयोग हो सके तथा आर्थिक नीति से आर्थिक शक्ति का विकेन्द्रीयकरण हो और हम अर्थ-व्यवस्था को आत्मनिर्भर बना सकें।

कृषि को प्राथमिकता और उसका भावी स्वरूप

भारत की अर्थव्यवस्था को सबल तथा गतिशील बनाने के लिए कृषि का तीव्र एवं स्वस्थ-विकास आवश्यक है। कृषि का स्वस्थ, न्यायपूर्ण एवं गतिशील विकास गैर कृषि अर्थ-व्यवस्था को भी सबल आधार प्रदान कर सकेगा। भारतीय जनसंख्या का ७२ प्रतिशत कृषि पर आश्रित है, परन्तु खेद है, अतीत के नियोजन में कृषि को वह प्राथमिकता नहीं मिल सकी जिसकी अपेक्षा थी। विभिन्न योजनाओं में सार्वजनिक विनियोग में कृषि तथा सिंचाई की स्थिति इस प्रकार थी :-

योजनाकाल	व्यय करोड़ रुपये	कुलयोजना व्यय का प्रतिशत
प्रथम पंचवर्षीय योजना	६०१	३१ "
द्वितीय पंचवर्षीय योजना	९५०	२० "
तृतीय पंचवर्षीय योजना	१७५३	२०.४ "
तीन वार्षिक योजनाएं	१४३८	२१.७ "
चतुर्थ पंचवर्षीय योजना	३६७४	२३.३ "
पाँचवीं पंचवर्षीय योजना	८०८३	२०.५ "

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना को छोड़ कर कृषि तथा सिंचाई पर केवल १/५ राशि व्यय की गई। कृषि पर बड़ी मात्रा पर व्यय की उपेक्षा की गई, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था का पर्याप्त विकास नहीं हो सका और ग्रामीण क्षेत्र की निर्धनता तथा बेरोजगारी की समस्या गम्भीर होती गई। भारत को ६००० करोड़ रुपए का खाद्यान्न आयात करना पड़ा। यदि इसी बड़ी राशि को कृषि-विकास तथा सिंचाई-सुविधाओं के प्रसार में लगा दिया गया होता, तो आज कृषि की स्थिति निश्चय ही दूसरी होती और ग्रामीण बेरोजगारी की स्थिति इतनी जटिल नहीं हुई होती। यह एक हर्ष का विषय है कि जनता सरकार की नवीन आर्थिक-नीति में कृषि-विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है। चौधरी चरणसिंह जी ने कृषि-विकास को यह प्राथमिकता दिलाने में अथक प्रयास किया है तथा अपने आर्थिक विश्लेषणात्मक विवेचन से उन्होंने नई सरकार को कृषि विकास को अधिकतम प्राथमिकता देने की प्रेरणा दी है।

कृषि-विकास की रूप-रेखा ऐसी होनी चाहिए जिससे हम ग्रामीण-निर्धनता तथा बेरोजगारी का उन्मूलन कर सकें। कृषि-भूमि की सीमितता, जन-कृषि पर अपार जनसंख्या के भार के भारतीय सन्दर्भ में यह आवश्यक है कि हम भूमि का अधिकतम मितव्ययी एवं लाभकारी प्रयोग करें। भारतीय परिस्थितियों के सन्दर्भ में हमें ३ या ४ एकड़ की जोतों को अधिकतम उत्पादक तथा लाभकारी बनाने का प्रयास करना पड़ेगा। कृषि विशेषज्ञों ने सिद्ध किया है कि छोटे फार्मों की उत्पादकता है। इस प्रकार छोटे किसानों के हितों की रक्षा की जा सकेगी। इस स्थिति का चौधरी साहब ने बड़ा उपयुक्त विश्लेषण किया है, जिसका सन्दर्भ

यहाँ देना उपयुक्त होगा। उन्होंने स्पष्ट किया कि "कार्षिक संरचना के चार उद्देश्य होने चाहिए—अधिकतम उत्पादन, रोजगार की व्यवस्था, न्यायोचित वितरण तथा जनवादी प्रवृत्तियाँ।" ऐसी व्यवस्था से ही हम इन चारों उद्देश्यों को पूरा कर सकते हैं, जिसमें स्वावलम्बी (खुदमुख्तार) खेतिहर अपनी छोटी-छोटी जोतों के मालिक हों और सेवा-सहकारी समितियाँ उनको एक दूसरे से जोड़ती हों। इस सम्बन्ध में भूमि-सुधारों को निष्ठापूर्वक अविलम्ब लागू करने की आवश्यकता है। भूमि-जोतों का समान वितरण होना चाहिए। ५० प्रतिशत व्यक्तियों के पास केवल ९ प्रतिशत भूमि होने की विषमता की स्थिति का अन्त होना चाहिए, तभी ग्रामीण अर्थव्यवस्था को न्यायपूर्ण बनाया जा सकेगा और शोषण को समाप्त किया जा सकेगा। नवीन जनता सरकार को भूमि-सुधारों के कार्यान्वयन को सर्वाधिक प्राथमिकता देनी चाहिए, जिससे नवीन सरकार की प्रगतिशीलता का प्रत्यक्ष प्रमाण जनता को मिल सके।

यह सन्तोष का विषय है कि जनता सरकार ने अपने पहले बजट में कृषि की प्राथमिकता को स्वीकार करके सन् १९७८-७९ में १७५४ करोड़ रुपये के परिव्यय का प्रावधान किया है अर्थात् सन् १९७७-७८ की तुलना में ४९० करोड़ रुपये की वृद्धि की गई है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण संरचना में सुधार के अनेक कार्यक्रमों, जैसे ग्रामीण सड़कें, पीने के पानी की व्यवस्था आदि का भी ध्यान रखा गया है।

श्रममूलक लघु तथा ग्रामीण उद्योगों को प्राथमिकता

भारत की अपार जनशक्ति को उत्पादन प्रक्रिया से जोड़ना हमारी नवीन विकास-नीति का आधार होना चाहिए। इसी नीति से भारत की बेरोजगारी तथा अर्द्धरोजगारी की समस्या का समाधान होगा। लघु तथा ग्रामीण उद्योगों को प्राथमिकता देने की नीति का कुछ क्षेत्रों में जानबूझकर गलत प्रचार किया गया। यह आरोप लगाया गया कि इससे बड़े उद्योगों तथा आधार भूत उद्योगों को समाप्त किया जायेगा। जिन क्षेत्रों की तकनीकी तथा संगठनात्मक आवश्यकतायें इस प्रकार की हैं, उनको केवल बड़े स्तरीय उद्योगों से पूरा किया जा सकता है; वहाँ उस प्रकार के उद्योगों का विकास होगा। परिवहन, बिजली, भारी उपकरण आदि के विशिष्ट क्षेत्रों में बड़े उद्योगों का अपना स्थान होगा और उनका विकास होना चाहिए। परन्तु भारत जैसे निर्धन देश के लिए जहाँ पूँजी का अभाव है और श्रम का बाहुल्य है, वहाँ पर विकास की सामान्य नीति श्रम-मूलक होनी चाहिए। इससे आर्थिक-शक्ति के केन्द्रीयकरण को रोक कर विकेन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलेगा। पूँजीमूलक बड़े-बड़े उद्योगों का जब स्वामित्व निजी क्षेत्र में होता है, तो इससे अर्जित लाभ भी कुछ चन्द समृद्ध व्यक्तियों तक ही सीमित रह जाता है। परिणाम स्वरूप बहुत बड़े धनी लोगों की शक्ति में अनवरत रूप से वृद्धि होती जाती है। २० बड़े निजी प्रतिष्ठानों के द्वारा आर्थिक-शक्ति के केन्द्रीयकरण के जो आँकड़े दिये गये हैं, उससे उसी सत्य की स्थापना होती है। विकास के लाभ कुछ लोगों तक ही सीमित हो जाते हैं, आर्थिक सत्ता के इस अहितकर केन्द्रीयकरण से राजनीतिक एवं सामाजिक भ्रष्टाचार को भी बढ़ावा मिलता है। अपने आर्थिक-हितों की रक्षा के लिए यह बड़े-बड़े पूँजीपति राजसत्ता को भी भ्रष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ते। भ्रष्ट अर्थतन्त्र और भ्रष्ट राजतन्त्र का गठबन्धन, स्वस्थ जनतन्त्र के विकास में सबसे बड़ा अवरोधक है। आर्थिक शक्ति के मठाधीश राजनीतिक दलों को चन्दा देकर राजनीतिक पर्यावरण को निश्चित रूप से दूषित करते हैं, उन पर प्रभावपूर्ण नियंत्रण लगाने के सभी अतीत के प्रयास निष्फल हुए हैं। अतः हमें विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था की स्थापना करनी होगी; मनुष्य को विकास का केन्द्र बनाना पड़ेगा।

पूँजी की प्रति इकाई पर अधिकतम रोजगार-सुविधाओं के विस्तार की विकास-नीति के माध्यम से ही हम निर्धनता, बेरोजगारी तथा आर्थिक-विषमताओं की समस्याओं का समाधान कर सकेंगे। सामान्य रूप से श्रममूलक औद्योगीकरण और अपवादरूप में पूँजीमूलक औद्योगीकरण की नीति का पालन होना चाहिए। देश में कुटीर और लघु उद्योगों का नियोजित विस्तार होना चाहिए। अतीत में भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु तथा कुटीर उद्योगों के विकास तथा प्रोत्साहन के लिए प्रभावपूर्ण कदम नहीं उठाये गये। प्रथम योजना में ४२ करोड़ रुपये, द्वितीय योजना में १८७ करोड़ रुपये, तृतीय पंचवर्षीय योजना में २४१ करोड़ रुपये,

चतुर्थ योजना में २५१ करोड़ रुपये लघु तथा कुटीर उद्योगों के विकास पर व्यय किये गये। पाँचवी पंचवर्षीय योजना में ५३५ करोड़ रुपये का प्रावधान है। इस योजना के कुल परिव्यय राशियों के सन्दर्भ पर लघु तथा कुटीर उद्योगों पर किया गया व्यय अपर्याप्त ही कहा जायेगा। यह हर्ष का विषय है कि जनता सरकार की आर्थिक नीति में इन उद्योगों के विकास को प्राथमिकता प्रदान की गई है। नवीन सरकार की औद्योगिक नीति में इन उद्योगों के विकास तथा संरक्षण की व्यापक व्यवस्था की गई है तथा इन उद्योगों की तकनीकी, वित्तीय विपणन एवं संगठनात्मक समस्याओं के समाधान के लिए प्रभावपूर्ण कदम उठाने का निश्चय व्यक्त किया गया है। जनता सरकार के सन् १९७८-७९ के प्रथम बजट में लघु तथा ग्रामीण उद्योगों के विकास के लिए २१९ करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। किसी एक वर्ष में इन उद्योगों पर व्यय की जाने वाली राशि से यह बहुत अधिक है। आशा है विकास का यह क्रम अनवरत रूप से चलता रहेगा।

कृषि-विकास तथा श्रममूलक एवं रोजगार प्रेरक लघु तथा ग्रामीण उद्योगों के विकास की नवीन प्राथमिकताएं निश्चय ही गरीबी, बेरोजगारी और विषमता की समस्याओं का समाधान कर सकेंगी। इस नवीन प्राथमिकता-क्रम से हम निश्चय ही सामाजिक-न्याय के लिए आर्थिक-विकास के लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे।

निर्धनता, बेरोजगारी तथा विषमता के उन्मूलन के मानवीय लक्ष्यों से प्रेरित नवीन आर्थिक प्राथमिकता के अनुरूप नवीन आर्थिक-संरचना आवश्यक है। ग्रामीण क्षेत्र में भूमि सुधारों को निष्ठापूर्वक लागू किया जाय, जिससे कृषि पर बड़े-बड़े भूस्वामियों का स्वामित्व समाप्त हो और कृषि क्षेत्र में व्याप्त शोषण की प्रक्रियाओं का अन्त हो। हरिजन तथा आर्थिक दृष्टि से दुर्बल वर्गों के भूमि-वितरण-कार्यक्रम को निष्ठापूर्वक लागू किया जाय, जिससे ग्रामीण क्षेत्र के पिछड़े तथा दुर्बल वर्ग के कृषक इन नवीन प्राथमिकताओं के व्यावहारिक रूप का दर्शन कर सकें। इन सुधारों के अभाव में लघु उद्योगों के विकास-कार्यक्रम के कार्यान्वयन में भी सावधानी बरतनी होगी। ऐसा न हो कि समृद्ध वर्ग के लोग ही अपना चोला बदल-बदल कर इन उद्योगों को दी जाने वाली वित्तीय एवं अन्य सुविधाओं को डकार जाँय तथा निर्धन एवं असहाय वर्ग इनसे लाभान्वित न हो सके। इसकी भी पूर्ण व्यवस्था हो कि इन उद्योगों में लगे श्रमिकों के आर्थिक-हितों की रक्षा की जाय। इन उद्योगों के विकास से सम्बद्ध साधनों का सामाजिक न्याय की दृष्टि से ही प्रयोग हो और इन उद्योगों की विकास प्रक्रिया पर सामाजिक नियन्त्रण हो। औद्योगिक-विकास-नीति को समन्वयपूर्ण बनाया जाय, जिससे वृहद्, मध्य, लघु तथा अत्यधिक लघु एवं कुटीर उद्योगों का राष्ट्रीय-हितों के अनुरूप सन्तुलित विकास किया जा सके। सभी स्तरों के उद्योगों के अपने विशिष्ट उपयोगिता क्षेत्र हैं और उनका राष्ट्रीय हितों के अनुरूप विकास होना चाहिये। इस समन्वित विकास-प्रक्रिया में यह सदैव ध्यान रखना चाहिए कि इससे निर्धन वर्ग की शक्ति में वृद्धि हो और शोषक एकाधिकारी शक्तियों का उन्मूलन हो। राष्ट्रीय विकास को अधिक न्यायपूर्ण एवं गतिशील बनाने के लिए एक ओर सार्वजनिक क्षेत्र को अधिक व्यापक, सशक्त तथा कुशल बनाने की आवश्यकता है और दूसरी ओर निजी क्षेत्र को सामाजिक आकांक्षाओं के अनुरूप नियमित करना भी आवश्यक है। सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों का मापदण्ड भी यही होगा कि वह किस सीमा तक सामूहिक प्रयास से न्यायपूर्ण आर्थिक-विकास-प्रक्रिया के प्रभावपूर्ण उपकरण बन सकें। नवीन प्राथमिकताओं पर आधारित आर्थिक नीति, नवीन न्यायपूर्ण आर्थिक-संरचना तथा भ्रष्टाचार-मुक्त कार्यान्वयन की त्रिधा से गरीबी, बेरोजगारी तथा विषमता की महान व्याधियों को समूल नष्ट किया जा सकेगा।

●

कृषक नेता

□ श्यामलाल यादव
संसत्सदस्य

उत्तर प्रदेश की राजनीति में श्री श्यामलाल यादव कुछ समय पूर्व चौधरी चरण सिंह के घनिष्ठ सहयोगी रहे हैं। भारतीय लोकदल से अलग हो जाने के बाद भी चौधरी साहब के व्यक्तित्व की एक अमिट छाप उनके मन-मानस में विद्यमान है। उन्होंने दिसम्बर सन् १९६७ में चौधरी साहब के जन्म दिवस को सम्पूर्ण देश में "किसान-दिवस" के रूप में मनाये जाने के निश्चय की सराहना की तथा अपने अनुभव के आधार पर चौधरी साहब के व्यक्तित्व और प्रखर प्रतिभा को लिपि बद्ध किया। नये राजनीतिक सन्दर्भ को लेकर श्री यादव ने लेख को प्रथम अनुच्छेद के साथ समीचीन बना दिया है। –सं०

२३ दिसम्बर को मुख्यमन्त्री श्री चरणसिंह की जन्म तिथि है। इस दिन को एक प्रतीक दिन की तरह मानकर इस प्रदेश के लोगों ने उसे 'किसान-दिवस' के रूप में मनाने का निश्चय किया है। नेहरू जी के जन्म-दिवस को बाल-दिवस के रूप में मान्यता प्राप्त हुई थी। भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन के जन्म-दिवस को पिछले कई वर्षों से 'अध्यापक-दिवस' के रूप में मनाने की परम्परा इस देश में डाली जा रही है।

श्री चरणसिंह के जन्म-दिवस को 'किसान-दिवस' के रूप में मनाने का निश्चय एक बड़ा ही सही और सामयिक निश्चय है। स्वतन्त्रता के बाद के बीस वर्षों में विकास और नियोजन के नाम से इस देश में जो कुछ किया गया है, उसके मूल में कुछ स्वीकृत नीतियाँ थीं। पिछले कुछ वर्षों से ऐसा प्रतीत होने लगा है कि उन मूल नीतियों में कहीं कोई खामी थी। जो अन्दाज लगाये गये थे, उनके गलत हो जाने से ऐसा

चौधरी चरणसिंह पैनी, कुशाग्र, एवं विश्लेषणात्मक खोजपूर्ण बुद्धि के धनी व्यक्ति हैं। अपने अति लम्बे काल के मन्त्रित्व में उन्हें प्रशासन का जो अनुभव प्राप्त हुआ है, उसका पूरा उपयोग वे गृहमन्त्री के रूप में कर रहे हैं। प्रत्येक समस्या और प्रश्न पर चौधरी साहब का अपना एक अलग दृष्टिकोण रहता है, जो स्पष्ट रहता है और जिसको वे निर्भीकतापूर्वक यथासमय अपने तर्कपूर्ण विवेचन के साथ रखते हैं, जिससे असहमति प्रकट करना आसान नहीं होता। चौधरी साहब अपने दिल की बात छिपाना नहीं जानते। उनकी प्रतिक्रिया उनके हाव-भाव से ही टपकती है। जो हृदय में होता है वही चेहरे पर। चौधरी साहब की विलक्षण स्मरण शक्ति, उनकी राजनीतिक सफलता का मूलभूत कारण है। जिसका नाम-परिचय वे एकबार अच्छी प्रकार जान लेते हैं, उसे वर्षों बाद भी देखकर पुकार लेते हैं। जो तथ्य, आँकड़े एकबार आँखों के सामने से गुजर जाते हैं, वे उनकी दलीलों में सदैव जान डालते रहते हैं और उनको साधार बनाते रहते हैं। वहीं एक बात यह भी है कि वे अपने विचारों के प्रति बड़ा आग्रह रखते हैं और जल्दी कुछ भी भूलते नहीं। भारत के निर्माण के लिए चौधरी साहब ने दिमाग में बहुत-सी कल्पनाएं सँजोकर रखी हैं। देखना है, भारत के गृहमन्त्री के रूप में वे उनमें से कितनी कल्पनाओं को साकार रूप दे सकते हैं। मार्ग कटंकाकीर्ण अवश्य है, पर उनके प्रयास भी भगीरथ हैं, इसमें संशय की गुंजाइश नहीं है।

२०–३–१९७८

भी लगता है कि यात्रा प्रारम्भ करते समय ही हम अपने सही रास्ते से शायद हट गये थे। गाँधी जी ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के काफी पहले से ही इस देश की समस्याओं को हल करने के लिए जो कुछ तरीके अपनाये थे और जिन्हें उनके अनुयायियों ने काफी दिनों तक प्रयोग में लाकर देखा-परखा था, स्वतन्त्रता के बाद उन पर आचरण करने की आवश्यकता उस हद तक नहीं समझी गई, जिस हद तक उसकी आवश्यकता थी। धीरे-धीरे योजना आयोग का विकास हुआ और उसने देश के लिए सोचने-समझने का पूरा जिम्मा अपने ऊपर उठा लिया। पिछले वर्ष योजना आयोग के उस उत्तरदायित्व पर भी शंका की जाने लगी और आज तो ऐसा लगता है कि योजना-आयोग का अस्तित्व ही खतरे में पड़ा हुआ है। इस सारे दौर में केवल एक आवाज ऐसी थी, जो बराबर यह कहती रही कि यदि इस देश का विकास करना है, तो हमें कृषि को प्राथमिकता देनी होगी और यदि इस देश का मनोबल टूटने से बचाना है, तो हमें किसान को गौरव देना होगा। इस देश का गरीब किसान सैकड़ों वर्षों से अपनी जमीन पर जूझ रहा है। कितने ही राज्य आये–गये, लेकिन किसान ने अपनी जमीन पर से अपने पाँव नहीं उठाये। आज जब इतने वर्षों के बाद इस देश को आजादी मिली है, तो पहली जरूरत है कि किसान के हाथ मजबूत किये जायें और उसे खेत में विश्वास से खड़े रहने देने की व्यवस्था की जाये। यह आवाज थी श्री चरणसिंह की और यह थी उनकी अंतरात्मा की आवाज। अकेले पड़ जाने का भय न करते हुए अपनी बात साहस और विश्वास के साथ उन्होंने आगे रखी और जहाँ तक उनकी शक्ति चली उन्होंने अपने स्वप्नों को व्यवहार की कसौटी पर कसा था। आज अगर उनके जन्म-दिन को 'किसान-दिवस' की संज्ञा दी जा रही है, तो इससे अच्छा निर्णय और क्या हो सकता है?

श्री चरण सिंह इतिहास के विद्यार्थी भी रहे हैं, इसलिए वे अपने कार्य का मूल्य भूत और भविष्य के बीच की एक कड़ी के रूप में अवश्य आँकते होंगे। उत्तर प्रदेश ने जमींदारी उन्मूलन की दिशा में पूरे देश की अगुवाई की, तो इसका श्रेय उन्हीं को था; क्योंकि वे मानते थे कि प्रजातंत्र या जन-राज्य तब तक केवल सपना होगा, जब तक धरती पर पसीना बहाने वाले किसानों का अधिकार न हो। उन्होंने अपने प्रयत्न से इस अधिकार को मनवाया और मनवाया ही नहीं, वे इस समस्या के सूक्ष्म से सूक्ष्म मुद्दों तक भी गये और इस सम्बन्ध में जितनी भी शंकायें उठ सकती थीं, उनका उन्होंने पूरी शक्ति से समाधान भी किया। जिन लोगों ने जमींदारी-उन्मूलन के पहले उनके लम्बे व्याख्यान सुने हैं, उनके मन पर इस बात का असर काफी साफ होगा कि वे जिस जनता के लिए सब कुछ कर रहे थे, उसे पूरी बात समझा देने के लिए कितने बेचैन थे। बाद में जमीन के छोटे-छोटे टुकड़ों को इकट्ठा करके किसान को खेती में और आसानी देने के लिए उन्होंने चकबन्दी की योजना का प्रारम्भ किया। उस दिशा में भी वे समस्या के हर कोने तक गये और ऐसे प्रयत्न किये कि किसान को किसी तरह का नुकसान न भोगना पड़े और जो कुछ वह करे, वह पूरी तरह समझ कर करे। भारतीय इतिहास में ऐसे एक आदमी का नाम शायद खोजने से ही मिले, जिसने अपने पूरे जीवन को इस एक काम के लिए इस हद तक समर्पित कर दिया हो। सम्राट् अकबर के समय में टोडरमल ने इस देश के विशाल भू-खण्ड पर जमीन की नाप-जोख के कुछ प्रयोग किये थे; उसे इस बात के लिए इतिहासकारों ने बड़ा यश भी दिया है, लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि टोडरमल ने ये सारे कार्य लगान की व्यवस्था सुधारने के लिए किये थे और अंततः इससे लाभ राजा को ही होना था। श्री चरणसिंह का नाम इतिहास में विशेषरूप से धरती और किसान के साथ इसलिये जोड़ा जायेगा कि उन्होंने जो कुछ भी किया, वह मूलतः किसान के लिए किया और विशेषरूप से गरीब किसान के लिए किया। जो वर्तमान है और जिसके परिणाम अभी पूरी तरह सामने नहीं आये हैं, उस पर मत व्यक्त करना बहुत उचित नहीं होता। कुछ ऐसी बातें भी होती हैं, जिन्हें भविष्य को ध्यान में रखकर किया जाता है और भविष्य ही उनका सही मूल्यांकन भी करता है।

यह कितनी विचित्र बात है कि जब श्री चरणसिंह की पीढ़ी के अधिकांश लोग चुक चुके हैं और उनके पास कहने के लिए नया कुछ नहीं रह गया है, तब ये नयी सम्भावनाओं से भरे हुए हैं और भविष्य के लिए उनके पास एक बड़ा सन्देश सुरक्षित है। उन्हें अपने इस महत्वपूर्ण कार्य का अनुभव है, इसीलिये वे शुरू से ही अपनी कल्पना को चरितार्थ करने के लिए बराबर प्रयत्नशील रहे हैं। उनकी यह

प्रयत्नशीलता कभी-कभी बेचैनी की सीमा छू लेती है और तब लोग यह कहते पाये जाते हैं कि "वह कभी न समझौता करने वाली आत्मा हैं और उनका किसी के साथ मेल नहीं बैठ सकता।" समस्याओं को यदि सही तरह से समझा जाये तो उनकी इस बेचैनी के भीतर उनकी कर्त्तव्य के प्रति गहन निष्ठा काम करती दिखायी पड़ेगी। आदमी सबको बहला सकता है, लेकिन अपनी अन्तरात्मा की आवाज को बहलाना उसके लिए मुश्किल हुआ करता है। खासकर ऐसे आदमी के लिए जिसका पूरा जीवन ही बड़े उद्देश्यों के लिए समर्पित हो चुका हो, यह और भी मुश्किल होता है। जिन लोगों ने उन्हें नजदीक से देखा है, जो उनकी आस्था में भविष्य का प्रकाश देखते हैं, उन्हें उनकी इस बेचैनी में एक विचित्र गरिमा के भी दर्शन होते हैं।

इसीलिए श्री चरणसिंह को दल या समय के मानदण्डों से परखा नहीं जा सकता। वे जब काँग्रेस में थे तब भी उनका अपना एक स्वर था, जो अलग सुनाई पड़ता था। आज भी उस स्वर की उपेक्षा नहीं की जा सकती और भविष्य में भी नहीं की जा सकेगी। स्वतन्त्रता के बाद इस देश के विकास-क्रम ने धीरे-धीरे महात्मा गाँधी से अपने सारे सूत्र तोड़ लिए थे। पिछले दो तीन वर्षों से यह बात उभर कर सामने आने लग गयी थी कि हमने गलतियाँ की हैं और हमें पुनः वे टूटे सूत्र जोड़ने चाहिए। सौभाग्य से श्री लालबहादुर शास्त्री ऐसा प्रधानमन्त्री हमें मिला था पर काल ने उसे हमारे बीच से बहुत जल्दी ही उठा लिया। अब उन बिखरे सूत्रों को जोड़ने का यह ऐतिहासिक कार्य इस देश में जो कुछ थोड़े से लोग कर रहे हैं, उनमें श्री चरणसिंह का नाम अन्यतम होगा।

उनके सोचने का अपना एक अलग ढंग है। उनके चिन्तन की गम्भीरता उनके पूरे कार्यकाल में बराबर अलग से दिखाई पड़ती रही है। पहले अपने आस-पास के किसानों को ध्यान से देखकर उन्होंने उन धारणाओं को कसा। यों वे अपने विश्वासों को काफी हद तक दृढ़ता से मानते हैं, लेकिन तथ्य और तर्क की उपेक्षा करके वे अपना हठ आगे नहीं बढ़ाते। जिन निष्कर्षों पर वे पहुँचे है, उन पर वे किसी भावनात्मक प्रेरणा से नहीं पहुँचे हैं, बल्कि उनका रास्ता बराबर तर्क और अध्ययन पर आधारित रहता है। यों तो उन्होंने इन समस्याओं पर बार-बार और काफी लिखा है, लेकिन उनके ये गुण सबसे अधिक उभर कर उनकी जिस एक पुस्तक में आये हैं, वह है "इण्डियाज़ पावरटी एण्ड इट्स सोल्यूशन"। पहली बार सन् १९५९ में प्रकाशित इस पुस्तक के अब तक कई संस्करण छप चुके हैं। आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने इसमें जगह-जगह परिवर्तन भी किये हैं और प्रमाण में नये तर्क और उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर यह पुस्तक इस देश की भू-सम्पदा का अद्भुत आकलन बन गयी है।

सम्पत्ति के कितने ही प्रकार होते हैं, उनमें सम्भवतः सबसे स्थायी प्रकार भूमि ही है। और तरह की सम्पत्ति छीज जाती है धीरे-धीरे या एक झटके में समाप्त ही हो जाती है, जबकि धरती कभी समाप्त नहीं होती। वह बराबर अपने आस-पास से प्राण-रस खींचती है और उसे हर नयी फसल के रूप में किसान को देती है। इसीलिये धरती पर किसान का मोह अपार होता है। इसी मोह के चलते वह धरती की रक्षा करता है, लेकिन कभी-कभी यह मोह उसके पाँव की बेड़ी भी बन जाता है। तरह-तरह के संस्कार उसे घेर लेते हैं और नये प्रयोगों की तरफ से वह हठवश अपना ध्यान खींच लेता है। जब श्री चरणसिंह किसान की धरती के लगाव की बात करते हैं, तब उनकी दृष्टि से किसान का यह धरती के प्रति अन्धमोह भी ओझल नहीं होता। वे चाहते हैं कि किसान नयी बातें सीखें, लेकिन नयी बात सीखने के माने अन्धानुकरण भी नहीं होना चाहिए। इसीलिये वे धरती में खाद की उपयोगिता तो मानते हैं, लेकिन रासायनिक खाद के अतिशय प्रयोग के बहुत अधिक पक्ष में भी वे नहीं हैं। वे अपनी यह एक बात मनवाने के लिए तर्क करते हैं, वे तर्क पूर्ण और विज्ञान सम्मत होते हैं, कि उनको मानने के अतिरिक्त कोई चारा ही नहीं रह जाता। वे निष्कर्ष के रूप में जोर देकर कहते हैं कि खादें जमीन के लिए आवश्यक हैं, लेकिन देखना यह चाहिए कि जमीन के जो मूल तत्व हैं, उन्हें अपना काम करने में बाधा न पड़े।

ऐसे ही जब वे यांत्रिक खेती की बात करते हैं या सहकारी खेती के पक्ष में दिये गये तर्कों की समीक्षा करते हैं तो उनके चिन्तन की यह पद्धति उनको स्पष्ट कथन के लिए प्रेरित करती है। इस देश में खेती के काम में लगे लोगों की

संख्या इतनी अधिक है कि जमीन अपने ऊपर आश्रित पूरी आबादी को काम देने में असमर्थ होती जा रही है। इसलिए हमारे सामने जहाँ अन्न-उत्पादन की समस्या है, वहीं उससे भी बड़ी समस्या है, यहाँ के लाखों-करोड़ों आदमियों को काम पर लगाये रखने की और काम भी ऐसा जो उत्पादक हो और जिससे आदमी को यह सन्तोष प्राप्त हो कि वह अपने लिए, परिवार के लिए या देश के लिए कुछ उत्पन्न कर रहा है। गाँवों में कितने लोग रह रहे हैं, उनमें से ऐसे बहुत से लोग हैं, जो देखने में खेती पर आश्रित हैं, लेकिन सही माने में या तो आधे बेकार हैं या वे केवल काम पर लगे हुए हैं, ऐसा दिखलायी भर पड़ता है। वस्तुतः उनके लिए कोई काम होता ही नहीं। आवश्यकता इस बात की है कि इन लोगों के लिए काम दिया जाये। यह काम खेतों में भी हो सकता है, या अन्य प्रकार के छोटे उद्योगों में या और दूसरे कामों में। लेकिन मूल प्रश्न तो यह है कि जब लोगों के पास करने के लिए काम नहीं है, तो यांत्रिक खेती का समर्थन कैसे किया जाये ? सभी लोगों के लिए जब तक हम कोई व्यवस्था न कर लें, तब तक हमें यांत्रिक खेती की चर्चा मुल्तवी करनी होगी।

कृषि एवं राष्ट्रीय सम्पदा के सम्बन्ध में

श्री चौधरी चरणसिंह जी कहते हैं कि "हमारी सबसे बड़ी शक्ति और धन हमारी यह विशाल जनता है, हमारे किसान हैं, हमारे मजदूर हैं। हम किसी भी ऐसी योजना की परिकल्पना नहीं कर सकते, जिसमें इन लाखों-करोड़ों लोगों का ह्रास होता हो या इनका महत्व घटता हो।" बची हुई मनुष्य-शक्ति को गाँधी जी कुटीर-उद्योगों में लगाने के पक्ष में थे। छोटे उद्योगों में काम करने वाले लोगों और उनमें लगी पूँजी का अनुपात व्यावहारिक होता है; मनुष्य उनमें अपनी सत्ता खो नहीं देता। इसी रास्ते चलकर वे गाँधी जी की-ही भाँति उन बड़े उद्योगों से समझौता करते हैं, जो ऐसे साधन उपलब्ध करते हैं, जिनसे जनता के ऊपर पड़ने वाला दबाव कम हो—जैसे सिलाई की मशीनें, साइकिलें या छोटी मशीनें और उनके पुर्जे— इस विशाल देश की लाखों झोपड़ियों पर पड़ने वाला दबाव कम हो, मनुष्य के कन्धे थोड़ा हल्कापन महसूस करें, जिसके लिए गाँधी जी बराबर चिन्तित रहे। इस सम्बन्ध में उन्होंने यहाँ तक भी कहा कि यदि बड़े उद्योग कायम करने हैं, तो उनका नियमन राज्य द्वारा होना चाहिए न कि पूँजीपतियों द्वारा। श्री चरण सिंह इस निर्णय को अपने तर्कों से बल देते हैं और विश्वास के साथ कहते हैं कि माना कि नियन्त्रण हर प्रकार का बुरा होता है, लेकिन जब तक हम आदर्श स्थिति में नहीं पहुँचते हैं, तब तक हमको भले और बुरे नियन्त्रण में से एक को चुनना होगा।

कृषि को साध्य माना जाये या साधन ? कुछ लोग श्री चरणसिंह के बारे में कहते हैं कि ये कृषि को जरूरत से ज्यादा महत्व देते हैं, लेकिन उनके विचारों से अवगत लोग इस भ्रम में नहीं पड़ते। वे जानते हैं कि पिछले वर्षों में हमारी राष्ट्रीय आय के ढाँचे में कृषि का महत्व बहुत कम करके आँका गया था। हमारे योजना-नियोजक विदेशों से धन लाकर धन-प्रधान बड़े-बड़े उद्योग स्थापित करने के पक्ष में थे, क्योंकि उन्हें यह बात बतायी गयी थी कि इस देश के किसान देश के खाने भर का अन्न पैदा करने में समर्थ नहीं हैं और बिना पूँजी बनाये देश की आर्थिक-स्थिति का विकास नहीं हो सकता। पूँजी बनाने के लिए बाहरी स्रोतों से पूँजी लेने और फिर एक ऐसी स्थिति में आ जाने के लिए वे लोग उतावले थे, जिसे अंग्रेजी शब्दावली में 'टेक-आफ' की स्थिति कहते हैं। विरोध इसी स्थिति का करना था, क्योंकि यदि इस देश के ९० प्रतिशत निवासी और खेती योग्य सारी भूमि मिलाकर इस देश की पूँजी का बड़ा हिस्सा नहीं बनते, तो बाहर की अपार सम्पदा लाकर भी वे इस देश की आर्थिक प्रगति नहीं कर सकते।

यह भी कहना गलत है कि कृषि से पूँजी नहीं बन सकती। जिस अमेरिका से अपार धन लाकर हम कारखाने खड़े कर रहे हैं, उस अमेरिका का आर्थिक ढाँचा शायद हमने ध्यान से नहीं देखा-परखा। वहाँ की समस्त पूँजी में कृषि से प्राप्त पूँजी का प्रतिशत लगभग आधा है या कहीं-कहीं इससे भी अधिक। कृषि-उत्पादनों के बल पर चलने वाले उद्योगों और मिलने वाली नौकरियों का अनुपात भी वहाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण है। फिर जिस देश से हम शहरी पद और बड़े कारखाने ले रहे हैं, उस देश की अर्थ-नीति की मूल प्रेरणा हमारी आँखों से क्यों ओझल हो जाती है ?

इस देश में यदि सही माने में कोई आर्थिक विकास लाया जाना है, तो इस देश की खेती की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए और खेती भी मनुष्य-प्रधान और श्रम-प्रधान होकर ही जीवित रहेगी, यह श्री चरणसिंह का दृढ़ विश्वास है। ऐसी स्थिति लाने के लिए हम जमीन बनायें, जिसमें इस देश के खेत और उससे उत्पन्न सम्पदा सबसे बड़ी पूँजी बन सके। वे यह स्वीकार करते हैं कि इस समय खेतिहर के पास इतना अन्न नहीं बचता कि वह उसे बेच सके और उससे अपनी क्रयशक्ति बढ़ा सके। हजारों तरह के सामान बाजारों में पटे हुए हैं, लेकिन खेतिहर उनमें से कितने खरीद सकता है और यह साफ दिखाई पड़ता है कि कृषि की अर्थनीति एक विचित्र दुष्चक्र में फँस गई है। जमीन पर से आदमियों का बोझा कम किया जा सकता है और जीवन का स्तर भी तभी ऊँचा किया जा सकता है, जबकि गांवों में रहने वालों की काफी बड़ी संख्या तरह-तरह के उद्योगों में लग जाये। पर जैसी स्थिति है, उसे देखते हुए लोग लगें भी तो कहाँ लगें और कैसे लगें ? यह तय है कि भारत ऐसे घने बसे देश में औद्योगीकरण का कोई भी स्वप्न तब तक चरितार्थ नहीं हो सकता, जब तक इस दुष्चक्र को तोड़ा न जाये। इस दुष्चक्र को तोड़ने के लिए बहुत-सी आवश्यकतायें सामने आती हैं और यह सत्य भी छिपा हुआ नहीं है कि हमारे देश के किसान काफी हद तक यह आर्थिक क्रान्ति लाने में सफल नहीं हो पा रहे हैं, लेकिन श्री चरण सिंह का विश्वास है कि यह दुष्चक्र टूट सकता है। इस तथ्य पर वे भावनात्मक दृष्टि से नहीं पहुचते हैं, क्योंकि अपने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ में जहाँ यह बात उठाई है, वहीं उन्होंने ऐसे तर्क भी दिये हैं कि बात न केवल समझ में आती है, बल्कि विश्वास से मन प्रसन्न भी होता है।

खेती की उपज बढ़ाई जाये, यह बात तो पहली है और इसे वे बार-बार जोर देकर कहते ही हैं, लेकिन इन तर्कों में जो सबसे बड़ी बात उभर कर सामने आती है, वह यह है कि वे खेती को जैसा कि उनके ऊपर दोष मढ़ा जाता है केवल साध्य नहीं मानते, वे उसे साधन मानते हैं, साधन ही नहीं सर्वप्रमुख साधन मानते हैं, इस विशाल भू-खण्ड के आर्थिक उद्धार का। उनका विश्वास है कि औद्योगीकरण खेती के आगे-आगे नहीं चलेगा, बल्कि उसे खेती के बाद चलना पड़ेगा। जब तक देश खेती की दृष्टि से सम्पन्न नहीं होता औद्योगीकरण अस्वाभाविक है; यह बात वे इस देश के नेताओं से और निर्माताओं से जोर देकर बता देना चाहते हैं कि इस देश की खेती का अधिकाधिक विकास करने तथा खेती पर से आदमियों को अधिक से अधिक हटाने के रास्ते के अतिरिक्त और कोई रास्ता देश के विकास का है नहीं। जब तक खेतिहर की खरीद की शक्ति नहीं बढ़ेगी, तब तक बाजारें नहीं बढ़ेंगी और तब तक उद्योगों का विकास भी नहीं होगा। जब तक ऐसी स्थिति नहीं आयेगी, देश में पूँजी का निर्माण नहीं होगा और यदि होगा भी तो बनावटी होगा।

श्री चरणसिंह सब तरह के तर्क करते हैं और दूसरों की बातें भी ध्यान से सुनते हैं, लेकिन उनके चिन्तन के मूल में मनुष्य का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे मनुष्य की शक्ति पर अपार विश्वास रखते हैं, लेकिन वे इस विश्वास के चलते यह भी नहीं भूलते कि मनुष्य में कमजोरियाँ भी होती हैं। मनुष्य और मनुष्य मिलकर समाज बनते हैं, देश बनते हैं, राष्ट्र बनते हैं और हर देश का या राष्ट्र का अपना अलग चरित्र विकसित होता है। यह चरित्र मुख्यरूप से बनाते हैं वहाँ के रहने वाले लोग। ऐसा नहीं होता तो क्या कारण था कि द्वितीय महायुद्ध के भयकर सहार में जापान और जर्मनी ऐसे देश पूरी तरह नष्ट होने के बाद भी नये सिरे से खड़े हो गये। लेकिन सारी प्राकृतिक सम्पदा होने तथा बड़े राष्ट्रों का समर्थन पाने के बाद भी मध्य-पूर्व के देश आज भी घिसटते चल रहे हैं। सुविधा-विहीन एक छोटा-सा देश इसराइल उत्पादन के क्षेत्र में चमत्कार कर सकता है, लेकिन उसी के आसपास कितने ही देश हैं, जिनका चेहरा आज भी नहीं बदला है।

श्री चरणसिंह मूलतः इस देश के गरीब और मेहनती किसान के लिए निरन्तर सोचते रहते हैं, उसकी कमजोरियाँ जानते हैं, उसकी अच्छाइयाँ भी जानते हैं, उसकी सीमायें भी जानते हैं। पर सब मिलाकर उसको अपने घर के एक सदस्य के रूप में स्नेह करते हैं और उसकी उन्नति की कामना भी करते हैं। उनकी यह उदारता उन्हें सही माने में इस देश का एक सच्चा किसान बनाती है।

—'पंचायत राज' से साभार

चाणक्य से चरण सिंह तक

□ आचार्य जटाशंकर शास्त्री

न केवल भारतीय क्षितिज प्रत्युत आपरिधि विश्व-मानवता जिनके परिपक्व ज्ञानालोक से सतत् प्रभावित एवं अभिभूत होती रही है ऐसे अनेक मनीषी एवं मौलिक जीवन-दर्शन प्रदान करने वाले महानतम् व्यक्तित्व कालचक्र के प्रत्येक आवर्त में सामाजिक तथा राष्ट्रीय मूल्यों की रक्षा के लिए हमें प्राप्त होते रहे हैं। ऐसे व्यक्तित्व युग पुरुष, मानवता के गौरव तथा इतिहास के निर्माता होते हैं।

अधुनातन परिवेश में परिव्याप्त दुर्बलताओं, टूटन, घुटन, भूख, त्रासदी तथा अभावजन्य छटपटाहट को अनुभूत करके संत्रस्त मानवता के कष्टों को दूर करके उसके व्यापक हितों की रक्षा के लिए स्वकीय जीवन को समर्पित कर देने वाले चौधरी चरणसिंह एक ऐसे ही युगरत्न हैं। राष्ट्र का बहुमुखी विकास उनका साध्य एवं लोक कल्याणकारी शासन पद्धति उनका साधन है। समतावादी समाज की स्थापना उनका लक्ष्य एवं सुदृढ़ राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था उनका उद्देश्य है।

किसी भी राष्ट्र के समुचित विकास के लिए उसका आर्थिक विकास एक महत्त्वपूर्ण सोपान है। लचर अर्थ-व्यवस्था की स्थिति में कोई भी विकास अभीष्ट शिखरों को स्पर्श नहीं कर सकता। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री चाणक्य का कथन है—

नाधनाः प्राप्नुवन्त्यर्थान्नरा यत्नशतैरपि ।
अर्थैरर्थाः प्रवध्यन्ते गजाः प्रतिगजैरिव ॥

कौ० अ० ९।४।३८

"अर्थहीन व्यक्ति शतशः प्रयत्न करके भी अभीष्ट अर्थ (लक्ष्यों) को प्राप्त नहीं कर पाते। धन से अन्य लक्ष्य उसी प्रकार परिपूर्णता की दिशा से खिंचते चले आते हैं जैसे हाथियों के द्वारा हाथी खींच लिए जाते हैं।"

इतिहास के परिप्रेक्ष्य में भारतीय अर्थ व्यवस्था का विकास क्रम अनेक पड़ावों से होकर गुजरा है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक अनेकों प्रमुख अर्थशास्त्रियों में चाणक्य ने ही सम्भवतः सर्वप्रथम सुगठित एवं व्यापक रूप से राज्य के प्रत्येक अंग पर विचार किया है एवं क्रांतिकारी आर्थिक कार्यक्रम राष्ट्र को दिया है, जिसका आज भी विश्व के अर्थशास्त्री लोहा मानते हैं।

कहा जाता है कि इतिहास की पुनरावृत्ति हुआ करती है। यह एक आश्चर्यजनक संयोग ही कहा जायेगा कि तत्कालीन परिस्थितियाँ लगभग वही थीं, जैसी विगत दशक में भारतीय जनाकाश को दुर्दिन के रूप में आच्छादित किये हुये थीं। सिकन्दर के आक्रमण के समय समग्र देश असंगठित एवं नेतृत्वविहीन था। वह यूनान से प्रस्थान करके भारतीय राज्यों को रौंदता हुआ आया और चला गया। सारे देश में भगदड़ तथा हाहाकर मच गया। चाणक्य ने उस राष्ट्रीय अपमान को महसूस किया और पुनः आक्रमण का सामना करने के लिए एक राष्ट्रीय सरकार तथा नेतृत्व के लिए चिन्तित हो उठे। चन्द्रगुप्त मौर्य की सहायता से बिखरी हुई शक्तियों को एकजुट करके देशवासियों में नव चेतना का संचार करते हुए सुगठित शासनतन्त्र की

सुदृढ़ नींव स्थापित करने के दृढ़ संकल्प को लेकर वह आगे आये। राजतन्त्र की निरंकुशता एवं विलासिता समाप्त करने, राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को पुनर्गठित करने, हजारों देशवासियों के सामाजिक अधिकारों को बहाल करने के लिए सर्वाङ्गपूर्ण अर्थशास्त्र का प्रणयन करके लोक कल्याणकारी शासन सूत्र का विधान किया।

ठीक ऐसी ही कुछ स्थितियाँ विगत दशाब्दी में विद्यमान थीं। आम नागरिक एवं शासक वर्ग के बीच एक गहरी खाई थी। तानाशाही की घुड़दौड़ जनवादी विचारों को रौंद रही थी। पूरा शासनचक्र स्वार्थपरता की धुरी पर घूम रहा था। मंत्रि परिषद मात्र दरबारी बनकर रह गई थी, उसकी कार्यकुशलता का मूल्यांकन तानाशाह की खुशामद की मात्रा एवं विधि पर किया जाता था। निराशापूर्ण वातावरण जनमानस को झकझोर रहा था। राष्ट्र की रचनात्मक एवं प्रतिरोधात्मक शक्ति का ह्रास हो चुका था। भूलुण्ठित मकान, त्रस्त किसान एवं आतंकित आम इन्सान चुपचाप सब कुछ देख रहा था अलबत्ता उसकी गुहार सुनने वाला कोई नहीं था। राजनेता कैद थे, कौन जाने कहाँ? मानवता मुख पर पट्टी बाँध कर सिसकियाँ ले रही थी।

कहा जाता है कि तूफान निकल जाने के बाद भूमि की उर्वराशक्ति में कुछ वृद्धि होती है। ऐसा ही हुआ। समूचा राष्ट्र अपमान के इस गरल घूँट को पीकर नीलकण्ठ बन गया—धन्य है उसकी प्राणवत्ता। भारतीय जन मानस ने एक ऐसी राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की कल्पना की जो राष्ट्र की रक्षा का स्थायी प्रबन्ध कर सके तथा राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का उन्नत पुनर्गठन आम आदमी के सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक अधिकारों को बहाल करके शासन की निरंकुशता एवं भ्रष्टाचार के दल-दल से उसे उबार सके। ऐसे समय में एक और चाणक्य मिला भारत को युग—सापेक्ष नवीन संस्करण—महामनीषी चौधरी चरणसिंह का मानवरत्न उभर कर सामने आया।

किसी भी महान कार्य को सम्पन्न करने के लिए व्यक्ति की महत्वाकाँक्षायें ही निर्णायक तत्त्व नहीं हुआ करतीं, बल्कि कोई न कोई आदर्श ही उसे आगे बढ़ाता है। जनता की अभीष्ट सरकार की स्थापना करनी थी। इसके लिये जन सहयोग अपेक्षित था तो दूसरी ओर बिखरे हुए राजनीतिक दलों को भी एक विचारधारा में संयुक्त होकर प्रयास करना था। अतः राष्ट्रीय पुनर्निर्माण, जनता के मौलिक अधिकारों को पुनः प्रदान करने के कार्यक्रम को लेकर वह जनता के बीच में आए। जनता के मानसिक विचारों को एक ठोस एवं प्रगतिशील आधार मिला। फलतः उसने आश्वस्त होकर उन्हें अपना पूर्ण विश्वास एवं समर्थन प्रदान किया। जनता की जय हुई।

चौधरी चरणसिंह एवं चाणक्य के आर्थिक विचार बहुत अंशों में एक जैसे हैं। चाणक्य का अर्थशास्त्र एक सामाजिक संस्थान है। राष्ट्र का अध्यक्ष अर्थात् राजा भी अन्य छः प्रकृतियों की भांति सातवीं प्रकृति मात्र है। उसमें निरंकुशता अंकुरित न होने पाये इसके लिए समाज द्वारा निगरानी रखने की बात चाणक्य स्वीकार करता है।

चाणक्य विदेशी पूँजी तथा श्रम के प्रभाव को राष्ट्रीय अर्थनीति में नकारता है। स्वावलम्बी अर्थव्यवस्था पर बल देकर शूद्रों तथा मजदूरों की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए क्रान्तिमय विधान करता है। उसकी दृष्टि में आर्थिक विकास का मूल आधार कृषि है। वार्ता के तीनों अंगों—कृषि, पशुपालन तथा वाणिज्य का प्रतिपादन करते हुए भी कृषि पर विशेष बल देता है।

मनुष्याणां वृत्तिरर्थः। मनुष्यवती भूमिरित्यर्थः। तस्याः पृथिव्या लाभ पालनोपायः शास्त्रमर्थशास्त्रम्।

—कौ० अ० १५।१।१-३

वस्तुतः विनिमय के माध्यम के रूप में विकसित मुद्राएँ धन नहीं हैं, बल्कि वास्तविक धन तो पृथ्वी ही है। पृथ्वी से उत्पन्न अन्न आदि सर्वश्रेष्ठ धन है। "नहि धान्य समोह्यर्थ।" चा० सू० २७५। साथ ही किसी प्राकृतिक पदार्थ में संतुष्टि के गुण में वृद्धि करने वाले श्रम तथा परिस्थितियों को भी सम्पत्ति कह सकते है।

कृषि का विकास तथा भूमि का अधिकाधिक उपयोग अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ आधार प्रस्तुत करता है, किन्तु यह

तभी सम्भव है जब परिश्रमी एवं अप्रमादी व्यक्ति उसमें उत्पादन बढ़ाने के लिए कृत संकल्प हों। ऐसे व्यक्ति को प्रोत्साहित करते हुए उनके श्रम का पूर्ण लाभ दिला कर श्रम की प्रतिष्ठा बढ़ाना सरकार का दायित्व है।

यदि कोई कृषक अधिक भूमि का स्वामी होने के कारण या प्रमादवश या अन्य इसी प्रकार के कारण वश भूमि में अपेक्षित उत्पादन नहीं करता तो उसे इसका स्वामी रहने का कोई नैतिक अधिकार नहीं। शासन को चाहिए कि उस भूमि को लेकर किसी अन्य उपयुक्त कृषक को दे दे।

अकृषता माच्छिद्यान्येभ्यः प्रयच्चेत्।
कौ० अ० २।१।१२

उत्तम पैदावार के लिए खेती के वैज्ञानिक साधनों का ज्ञान कराने के साथ ही उत्तम बीज (यथा बीज तथा निष्पत्तिः। या. सू. ४५७) बैल, धन तथा अन्य उपकरण देकर राज्य को किसानों की सहायता करनी चाहिये तो किसानों का भी कर्त्तव्य है कि उसे शनैः-शनैः (आसान किस्तों) में वापस कर दें—

धान्य-पशु-हिरण्यैश्चैनाननुगृद्धी यात्-तान्यनुसुखेनदद्युः।
कौ० अ० २।१।१५

दैवमातृका कृषि से अभीष्ट फसलें नहीं उत्पन्न की जा सकतीं, अतः सिंचाई की उत्तम व्यवस्था करना जहाँ शासन का दायित्व है, वहीं श्रमदान द्वारा इस दिशा में सफल प्रयास करना समाज का भी कर्त्तव्य है। "राजा को चाहिए कि नदियों पर बड़े-बड़े बाँध बँधवाये तथा वर्षा के पानी को बड़े-बड़े जलाशयों में एकत्रित करे।"

सहोदकमाहायोदकं वा सेतुं वन्धयेत्। अन्येषां वा बन्धता भूमिमार्गवृक्षोपकरणानुग्रहं कुर्यात्। कौ० अ० २।१।२२-२३

श्रमदान के महत्व तथा विधान पर प्रकाश डालते हुए चाणक्य का कथन है-'जब जनता किसी पुल, बाँध. (सड़क आदि) का निर्माण कार्य मिलकर कर रही हो, उस कार्य में यदि कोई व्यक्ति किसी कारणवश सम्मिलित न हो पा रहा हो, तो अपने स्थान पर किसी व्यक्ति को या आवश्यकतानुसार बैल आदि देकर सहयोग करे।'

संभूय सेतुबन्धादपन्नामतः कर्मकरबलीवर्दाः कर्मकुर्युः। व्यय कर्मणिच भागी स्यात्। कौ० अ० २।१।५५-५६

चाणक्य कालीन भारत प्रायः गाँवों का भारत था। 'गाँवों की उन्नति ही देश की उन्नति' के सिद्धान्त को वह स्वीकारता है। नये नये उपनिवेश बसाने, नई भूमि तोड़ने पुराने तथा पिछड़े गाँवों को विकसित करने, कृषिपरक अर्थ तन्त्र की व्यवस्था करने के महत्वपूर्ण कार्यक्रम प्रस्तुत करता है।

यह एक सामान्य सिद्धान्त है कि जब कभी अर्थतन्त्र की किसी मुख्य शाखा का विकास होता है, तो उसके साथ चलने वाली अनेक उपशाखाओं की उन्नति अनायास ही की जा सकती है। कृषि विकास के साथ ही साथ कृषि के लिए उपयोगी एवं कृषि पर आधारित अनेक कुटीर एवं लघु उद्योगों का विकास होना चाहिये। बढ़ई, लुहार, धरती खोदने वाले, धोबी, नाई, सूत कातने वाले प्रभृति उद्योग स्वतः सजीव हो उठते हैं। शासन को इनका संरक्षण करना चाहिए। गाँवों के समीप बड़े बड़े कारखानों तथा प्रतिष्ठानों की उपस्थिति से किसानों एवं ग्रामीणों के शोषण की आशंका स्वाभाविक है, अतः चाणक्य उनका प्रतिशोध करता है। यातायात तथा उत्पादित वस्तुओं को बड़ी मंडियों में ले जाने के लिए सड़कों आदि की व्यवस्था राज्य का उत्तरदायित्व है।

बाहर से वे ही चीजें मँगाई जायें जिनका उपयोग अपरिहार्य तो है, किन्तु जिनका उत्पादन स्थानीय संसाधनों से न किया जा सकता हो। राष्ट्र को समृद्ध करने वाली वस्तुओं के आयात को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। चाणक्य कहता है-'जो माल राष्ट्र का उपकारी हो उसे बिना शुल्क ही आने देना चाहिए क्योंकि अच्छी चीज का बीज दुर्लभ है।'

महोपकारमुच्छुल्कं कुर्याद् बीजं तु दुर्लभम्।
कौ० अ० २।११।३९

अकुशल मजदूरों की जीविका तथा बंधुआ मजदूरों की मुक्ति की समस्यायें चाणक्य काल में भी रही हैं। उनका भी समाधान करना चाणक्य भूला नहीं है—

कर्मानुरूपं कारुभ्यो भक्त सेवनम्। कौ० अ० २।२४।४०

जो भी व्यक्ति शूद्रों के बच्चों को बेचे या गिरवी रखे उसको पूर्व, मध्यम या उत्तम साहसदण्ड अर्थात् कठोर, कठोरतर या कठोरतम दण्ड देना चाहिए यहाँ तक कि मृत्यु दण्ड तक दिया जा सकता है ।

परजनस्य पूर्वमध्यमोत्तमवधादण्डाः क्रेतृश्रोतृणांच ।।
कौ० अ० ३।१३।५

अर्थव्यवस्था के सभी अंगों पर शासन के नियन्त्रण को स्वीकारते हुए चाणक्य शासनतन्त्र को लगभग ३० विभागों में विभक्त करता है, जिनमें से कई विभाग आर्थिक-व्यवस्था के सर्वाङ्गीण विकास के लिए अधिकृत किये गये हैं ।

इसी प्रकार चौधरी साहब के आर्थिक-विचार उनकी गहन अनुभूति एवं दूरदृष्टि, राष्ट्रवादी व्यक्तित्व की परिचायक है। उन्नीसवीं शताब्दी की सरकारी अर्थनीति अधिकतर सिद्धान्तपरक थी। उसके परिकाल्पनिक स्वरूप की उपेक्षा की गई। स्वतन्त्र भारत के विकास के लिए गाँधी जी ने एक विस्तृत आर्थिक-कार्यक्रम दिया, किन्तु उनके प्रमुख उत्तराधिकारी उस मार्ग से भटक गये और पश्चिम की नकल पर भारी औद्योगीकरण के सिद्धान्त को स्वीकारते हुए देश की परिस्थितियों को अनदेखा कर गये। उनकी योजनायें उत्पादन की मात्रा में द्रुततापरक थीं। उनका औद्योगीकरण पूँजीपरक था जबकि जनबहुल देश के लिए आवश्यकता थी कि श्रमपरक औद्योगीकरण की नीति अपनाई जाय। परिणामतः देश में बेरोजगारी सुरसा के मुख की तरह बढ़ती गई, अमीरों एवं गरीबों के बीच की खाई और अधिक गहरी एवं चौड़ी होती गई।

अठारहवीं शताब्दी के मध्य इंगलैण्ड में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का उदय हुआ था किन्तु इससे धन के असमान वितरण से पूरा समाज दो विरोधी वर्गों में विभक्त हो गया–पूँजीपति वर्ग एवं श्रमिक वर्ग। अतः पूँजीवाद के विकल्प के रूप में समाजवादी अर्थव्यवस्था का उदय हुआ। उत्पत्ति के साधनों पर समाज के हर नागरिक का या दूसरे शब्दों में राज्य का नियंत्रण था, किन्तु भारत में समतापूर्ण समाज निर्माण की दृष्टि से सार्वजनिक क्षेत्र का विशेष योगदान नहीं रहा। उद्देश्य से भटकने की स्थिति ही इसका मुख्य कारण थी।

दोनों विश्वयुद्धों के पश्चात् मिश्रित अर्थव्यवस्था का उदय हुआ। आर्थिक स्वतन्त्रता रहते हुये भी सरकार का नियंत्रण आवश्यक माना गया। सामाजिक हित के लिए व्यक्ति की आर्थिक स्वतन्त्रता के अधिकार को सीमित करने का अधिकार शासन को प्राप्त हो गया, किन्तु दुर्भाग्य है कि भारत में इसका अच्छा परिणाम नहीं निकला। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग पूँजीवाद के विकास के मार्ग को प्रशस्त करते रहे। जीवन के शाश्वत मूल्यों की भावना का उदय एवं विकास जनमानस में नहीं किया जा सका। परिणामतः भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता रहा और निजी क्षेत्र के उद्योगों के हाथों में अधिकतर सम्पत्ति केन्द्रित होती रही। चौधरी साहब ने 'भारत की अर्थनीति–गाँधीवादी रूपरेखा, में इस तथ्य को उद्घाटित किया है :–

"भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस ने सन् १९७१ में लोकसभा के चुनाव घोषणापत्र में यह वायदा किया था कि वह आर्थिक सत्ता व सम्पत्ति का कुछ हाथों में केन्द्रीकरण रोकेगी, क्योंकि केन्द्रीकरण जनतन्त्र व सामाजिक न्याय संकल्पना के विपरीत है। लेकिन दूसरे क्षेत्रों की तरह इस सवाल पर भी अधिकृत दस्तावेजों में व्यक्त किए गए सुन्दर विचारों को आगे चलकर ठोस कदम उठाने में पूरी तरह से झुठला दिया गया।" –पृष्ठ ८४

इसी तथ्य को और अधिक स्पष्ट करते हुए उनका कथन है 'श्रीमती गाँधी के १० वर्ष के शासन काल में अर्थात् सन् १९६६ से सन् १९७६ तक देश के शीर्षस्थ बीस औद्योगिक परिवारों की कुल परिसंपत्तियों में १२० प्रतिशत की वृद्धि हुई।'

किसी देश के आर्थिक विकास की सही दिशा निश्चित करने के लिए प्राकृतिक साधनों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। भारतीय संघ का क्षेत्रफल १२६९६४० वर्गमील है जिसमें लगभग ८२०० मील स्थल सीमा है। कृषि योग्य भूमि तो और भी कम है उस पर भी उसका वितरण सही मात्रा में नहीं है। कुछ लोगों के पास इतनी अधिक भूमि है कि वे पूरी जमीन को जोत–बो नहीं पाते, जबकि अनेक लोग भूमि के अभाव में बेरोजगारी का जीवन बिताने पर विवश हैं। अतः चौधरी साहब का विचार है–"भूमि के बँटवारे में

अधिकाधिक समानता से गाँवों में अधिकाधिक आर्थिक विकास होगा।"

यदि वास्तव में हमें अपने देश का विकास अभीष्ट है तो हमें दो कार्य साथ-साथ करने चाहिए–एक तो उत्पादन बढ़ाना और दूसरा कृषि योग्य कर्मकारों की संख्या के अनुपात को कम करना। अधिक बड़े-बड़े सरकारी फार्म भारत के लिए विशेष उपयोगी नहीं हैं और न ही अधिक छोटे-छोटे जमीन के टुकड़े। ढाई एकड़ से कम की कोई जोत नहीं होनी चाहिए।

"अगर हम चाहते हैं कि हमारा देश विकसित हो तो दो ही नुस्खे हैं–पहला, प्रति एकड़ कृषि उत्पादकता बढ़े और साथ ही साथ प्रति एकड़ काम करने वालों की संख्या घटे।" –पृ० १७

हमें श्रम की प्रतिष्ठा को स्थापित करना है। भौतिकवाद को मिथ्या कहकर नकारा नहीं जा सकता।

गाँधी दर्शन के क्रियात्मक पक्ष के अनुसार चौधरी साहब कृषि के लिए उपयोगी एवं कृषि पर आधारित लघु एवं कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहित करते हैं। इनकी उन्नति से देश से बेरोजगारी दूर करके अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ आधार दिया जा सकता है। भले ही परिणाम द्रुतगामी न हों पर निश्चित रूप से प्रतिगामी न होंगे।

कृषि विकास के लिये केवल व्यावहारिक रुख से ही कुछ सम्भव हो सकता है, केवल नारे बाजी से नहीं। वर्तमान सरकार ने चौधरी साहब की आर्थिक नीति को स्वीकार करते हुए पूरे बजट का ३० प्रतिशत कृषि पर व्यय करने का निर्णय लिया है।

"भारत जनसंख्या बहुल देश है। अतः कृषि पर दबाव कम करने के लिए उत्पादक रोजगार की ओर जनता को मोड़ने से गाँवों का विकास सम्भव है। "उधर गाँवों में ग्रामीण व लघु उद्योगों का जाल बिछाने की योजना है। गाँव के छोटे-छोटे दस्तकारों को पुनः प्रोत्साहित करने का हमारा विचार है। इससे जमीन पर भार कम होगा तथा ग्रामीण खेती के अलावा लघु उद्योगों से रोजगार पायेंगे। मैं चाहता हूँ कि किसान अपने परिवार से कम से कम एक व्यक्ति को खेती से हटाकर लघु उद्योग में लगाए।"

–(सा० हिन्दुस्तान २२ जनवरी सन् १९७८ पृ० १०)

लघु उद्योगों में उत्पन्न होने वाली वस्तुओं की खपत के लिए भारी उद्योगों पर कानूनी नियन्त्रण लगाना आवश्यक है कि वे उन वस्तुओं का निर्माण न करें।

समतावादी एवं सौहार्द्रपूर्ण आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन को प्रोत्साहित करने वाले चौधरी साहब के आर्थिक विचार उनकी गहन अनुभूति, मौलिक चिन्तन ऐतिहासिक ज्ञान एवं विस्तृत अध्ययन का प्रतिफल हैं। जनता को आशा है कि वह पूँजीवाद के दुर्ग के ऊपर आक्रमण करके अभिनव, प्रगतिशील, समतावादी-अर्थव्यवस्था के विजय अभिनव को और तीव्रतर करेंगे, जिससे निश्चित ही दूरगामी परिणाम अनुकूल ही निकलेंगे।

सिफारिश सबसे बड़ा भ्रष्टाचार है।
–मोरार जी देसाई

●

एक धवल व्यक्तित्व

□ राजेन्द्र चौधरी, विधायक
अध्यक्ष, उ० प्र० युवा जनता

महानता क्या है, यह कोई नापने योग्य गुण नहीं प्रतीत होता, फिर भी जब हम इसके सम्पर्कगत होते हैं, हम झट इसे पहचान लेते हैं। उच्चमन तथा वीर-हृदय जो सन्देह रहित होकर तथा विघ्न-बाधाओं की परवाह न करते हुए अपने लक्ष्य की ओर निरन्तरता के साथ आगे बढ़ते हैं, अपने अन्दर महत्ता का गुण रखते हैं। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में प्रत्येक क्षेत्र में कुछ पुरुष प्रकाश-पुञ्ज के रूप में अवस्थित होते हैं; वे पुरुष जो साहस पूर्वक यह घोषणा करते हैं कि अकेला रह जाने पर भी वे किसी से भयभीत नहीं होते। कोई भी उनका उपहास कर सकता है; अत्याचार, उत्पीड़न तथा संघर्षरत संकटापन्न परिस्थितियों की सलीब पर इन्हें टाँग सकता है; कर्तव्य-बोध से विचलित कर लोभी विचार-वृत्ति उत्पन्न करने का प्रयास कर सकता है; परन्तु वे कभी भी उसका प्रत्युत्तर क्रूरता, दमन तथा अनैतिकता से नहीं देंगे और न ही आशंकाग्रस्त होकर संघर्षपथ से विचलित होंगे। कारण, वे अन्तरमन में व्याप्त जीवन्त-कर्तव्य की भावना के प्रति अखण्ड-निष्ठा एवं स्वाध्यायी-कर्मठता के साथ प्रतिज्ञा-बद्ध हैं।

ऐसी ही महान् आत्माओं की श्रेणी में चरित्र-बल से बनी बुनियाद कहे जाने वाले प्रख्यात विचारक, महान् अर्थ-शास्त्री, मूर्धन्य राजनीतिक–आख्याता, निर्भीक–व्यक्तित्व, ओजस्वी-वक्ता तथा कुशलतम यशस्वी प्रशासक, केन्द्रीय गृह मन्त्री चौधरी चरणसिंह का नाम अग्रगण्य है।

कार्य की कोटि कैसी भी क्यों न हो–यथाशक्ति उसकी सर्वोत्तमता के प्रति निष्ठावान् चौधरी साहब निष्णात् कुशलता को कठोर परिश्रम की उपलब्धि मानते हैं। यही वे प्रखर आधार हैं, जिनके रहते नेकनीयती, ईमानदारी, दो टूक बात कह देने की हिम्मत, बेलाग ओजस्विता तथा मुल्क की तीन चौथाई से अधिक गँवई आबादी की हूक, भूख, बेकली, टूटन, मजलूमियत और किये जा रहे अनवरत शोषण के शिकार लोगों की बेचैनी के दर्द को अन्तर्वेदना की गहराइयों के साथ स्वयं महसूस करते रहे हैं। अतः संघर्षों को झेलकर अर्जित की गयी अटूट जनप्रियता तथा भावनात्मक रूप से दुखियों, दलितों का दर्द समझने की अद्भुत क्षमता का जीवन्त प्रतीक बन गये हैं–चौधरी चरणसिंह।

चौधरी साहब के समूचे राजनीतिक जीवन में उनके कृतित्व और व्यक्तित्व की मार्फत आज जो कुछ हमारे सामने है, वह सत्याचरण की सार्थकता, सिद्धान्तों के प्रति दृढ़ता, निष्कलक नैतिकता और निष्कपट दायित्व-भावना एक ऐसी जनप्रेरक सम्पदा है, जिसके बलबूते पर इस भौतिकतावादी युग-प्रतीची-द्वन्द्व में जहाँ लम्पटता, धूर्तता, अन्याय, शोषण, भ्रष्टाचार, हगामेबाजी, अर्कमण्यता और गैर बराबरी का दामन लिये हुए लोग शास्त्रीय परिभाषावलियों, कानूनी दाँव-पेचों, तुमुल नारेबाजी द्वारा स्थापित निपट स्वार्थी प्रचार, नितान्त कृत्रिम और कुत्सित राजनीतिक जोड़-तोड़ और चमाचम वक्तृता के अड्डेबाज आज न केवल तड़क-भड़क की ठाठदार गमक का आनन्द ले रहे हैं; वरन् आज वे पूरी साज-सज्जा से ओढ़ाई गई तिकड़मों के बल पर

निहायत खूबसूरती के साथ मुल्क की गरीब जनता के रहनुमा, प्रवक्ता और न जाने क्या-क्या बनने का ढोंग कर रहे हैं। ऐसे ही लोगों की आँख की किरकिरी बन गये हैं हमारे चौधरी साहब। प्रपंचियों की घेरेबन्दी, जोड़-तोड़ और कुत्सित साजिशों का नागपाश जितना कसा व कड़ा होता जाता है, इस ईमानदार-बेदाग व्यक्ति की विशाल जनप्रियता का अजगर एक फुंफकार में बड़ी उम्मीदों और कोशिशों से ढाले गये नागपाश की धज्जियाँ उड़ा देता है।

प्रत्येक मनुष्य की कुछ संवेदनशील आस्थायें और मान्यतायें होती हैं, जिन पर वह व्यक्ति पूरी तरह निष्ठावान रहता है। वह समस्त चिन्तन, मूल्य, आस्थायें और मान्यतायें समाज और राष्ट्र के व्यापक हितों के परिप्रेक्ष्य में कड़ी जाँच-परख, असंदिग्ध विश्वसनीयता और भोगे हुये कष्टकारी अनुभवों के सत्य पर आधारित होती हैं। तब इस प्रकार की पृष्ठभूमि को वह व्यक्ति यदि लगनशील, कठोर परिश्रमी, कृत-संकल्पित और निर्भीक है, तो पूरी सच्चाई के साथ बिना गुमराह हुए मूल्यहीन राजनीति, सिद्धान्त विहीन सत्ता-मोह, पेशेवर चाटुकारिता के चटोरेपन तथा समर्थनहीन तथाकथित स्थापित व्यक्तित्वों की बिना कोई परवाह या समझौता किये अपनी असदिग्ध ईमानदारी एवं कर्मठता की अतिशय शक्ति के बलबूते पर जन-जन की आकांक्षा, आशाओं और विश्वासों का केन्द्र-बिन्दु बन जाता है।

आज चौधरी साहब के बारे में सोचता हूँ, तो पाता हूँ, कि उनके पीछे रहस्य नाम की कोई भी ऐसी वस्तुपरकता नहीं है कि जिसे अन्वेषण करने की आवश्यकता महसूस हो। उनकी कार्यशैली तथा उनके चरित्रगत मूल्य सर्वथा स्पष्ट और वास्तविक हैं। चौधरी साहब ने सदैव जर्जर मानवता के कल्याण के लिए अकथनीय संघर्ष सहा है और कुर्बानियाँ दी हैं, सत्ता का विरोध किया है और तब तक अटूट आत्मशक्ति के साथ डटे रहे हैं, जब तक कि निश्चयात्मक परिणामों तक नहीं पहुँच गये। यही वे कारण हैं कि चौधरी साहब जनप्रियता के सर्वोच्च शिखर पर आरुढ़ हैं। जब भी ऐसे अवसर आये हैं, चाहे वह विधानसभा चुनाव हों या लोकसभा के इस पाक-साफ व्यक्ति की ईमानदारी पर अटूट विश्वास करते हुये जनमत ने पूरे यकीन और मोहब्बत के साथ हमेशा हमेशा पूरा साथ दिया है। यही सबूत है चौधरी साहब की सफलता, लोकप्रियता और महानता का।

सत्ता के मद में दमन का आनन्द लेने वाले लोग जिस प्रकार पूरे तालमेल के साथ जन-शक्ति को घेर लेते हैं और उसे निरीह अवस्था में छोड़ देते हैं, ऐसी ही कुछ परिस्थितिगत वीभत्स दशायें हमारे राष्ट्र के लोकतंत्र की थी देश के नागरिकों को कुछ गिरोहबन्द भौतिक सम्पदा से लदे-फँदे मुट्ठी भर लोगों के कारण जिन्हें, भारी पूँजी व्यवस्था, पृथकतावादी राजनीतिक और अराजकतावादी शक्तियों का मिला-जुला शर्मनाक सहयोग प्राप्त था। घिनौनी साजिशों के माध्यम से नैतिकता को सलीब पर चढ़ाकर कठिन कीलें ठोंकी जा रही थीं। विवशता, अभाव और असुरक्षा की टूटन से जनता को निस्तब्ध कर दिया गया था। चौधरी साहब जनमतरूपी 'अभिमन्यु' को विवश अकाल काल का ग्रास बन जाने की पृष्ठभूमि में दुर्भावनावश निर्मित किये गये इस चक्रव्यूह को पूरी तरह तोड़ने में समर्थ हुये हैं। मानवीय चेतनता की जड़ खोदने वाले स्वार्थी तत्व पुनः सिर न उठा सकें यह यज्ञ अभी शेष है। केन्द्रीय सरकार में गृहमन्त्री पद ग्रहण करने के पश्चात् चौधरी चरण सिंह ने जनहित के विरुद्ध खतरा उत्पन्न करने वाले उन लोगों पर जो बन्दर बांट के अभ्यस्त थे, पर करारा आक्रमण किया है और एक साथ प्रचारित राजनेता, उच्चतम प्रशासक और शैली सम्राटों की सुगठित और सुनियोजित मादकता की चकाचौंध को न केवल तोड़ दिया है, बल्कि इससे एकबारगी खतरे की घन्टी बजने का एहसास पैदा हो गया है। अब भविष्य के लिए कोई भी व्यक्ति चाहे वह कितना ही भव्य और गरिमामण्डित क्यों न हो, जनहित के विरुद्ध प्रेरक मूल्यों की स्थापना, जन-समस्याओं के निराकरण एवं सदाचरण के मार्ग को अवरुद्ध करने का प्रयास करेगा, उसे छोड़ा नहीं जायेगा।

निरन्तर तीस वर्षों से किये जा रहे उस व्यवस्थात्मक अन्याय और शोषण, जिसने राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की चूलें हिला दी हैं और जिसकी वजह से मुल्क में अस्सी फीसदी ग्रामीण आबादी की समस्यायें असमानता की खाई को इतना चौड़ा कर चुकी हैं कि त्रुटिपूर्ण परोन्मुखी आर्थिक नीतियों के प्रतिफल स्वरूप अब यह एक राष्ट्रीय अनिवार्यता बन गई

है कि प्राथमिक और बुनियादी रूप से कौन से तत्काल ऐसे कदम उठाये जायें, जिससे निर्धनता की गरदन पर प्रहार किया जा सके और बेकार-बेरोजगार, जनसमूह के हाथों को काम मिल सके। अतः चौधरी चरणसिंह जी कहते हैं कि प्रशासन में भ्रष्टाचार समाप्त हो, मनमानी की प्रवृत्ति पर अंकुश हो और मेहनतकश प्रवृत्तियों को सम्बल प्रदान करने के लिए आर्थिक नीतियों के मुद्दे, ग्रामोन्मुखी हों। तब ही इस देश की जनता वास्तविक अर्थों में मूल्यवान रोटी और आजादी का रसास्वादन करने में समर्थ हो सकेगी।

आज चौधरी साहब जनता पार्टी की पावन प्रतिष्ठा, जनता को दिये गये वचन, दृढ़ संकल्प और साधनों की पवित्रता के मार्ग पर जिस अदम्य साहस के साथ चल रहे हैं, उससे देश की आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं का निश्चय ही समाधान हो सकेगा, इसमें किंचित भी सन्देह नहीं है। मेरा तथा चौधरी साहब के असंख्य अनुयायियों का उन पर अटूट विश्वास है।

ईश्वर से कामना है कि चौधरी साहब अनन्तकाल तक हमारा नेतृत्व करते रहें।

●

भोर के समय आकाश से टूट कर धरती की गोद में गिरे तारे ने आश्चर्य से देखा कि एक अंकुर से तीन पत्ते फूट निकले। उसने पास ही खड़े एक बूढ़े बरगद से पूछा यह क्या हो रहा है? बूढ़े वट ने जबाब दिया–

इसने तीन पुत्रों को जन्म दिया है। एक वह जो राज करता है, दूसरा वह जिसके द्वारा राज होता है तीसरा वह जिस पर राज होता है। दुर्भाग्य से पहिला अन्धा, दूसरा बहरा और तीसरा गूँगा है।

'उफ'! तारे ने लम्बी सासें लीं, 'क्या ये सदा ऐसे ही रहेंगे'? 'नहीं' बरगद ने पूरी दृढ़ता से कहा, 'मेरे सामने युगों का इतिहास है। अदूरागत भविष्य की हलचल मेरी जड़ें महसूस कर रहीं हैं। निश्चय ही ये रोगमुक्त होंगे—तब इनमें अन्तर की असमानता न रहेगी। धरा तब शस्य-श्यामला होकर फूलों की हँसी हँसेगी। झरने इसकी आशा-आकांक्षाओं, उल्लास और उमंगों के तराने गायेंगे और रत्नगर्भा से फूटे हुए अंकुर आकाश की ऊँचाइयाँ छुएँगे।'

– तिलक